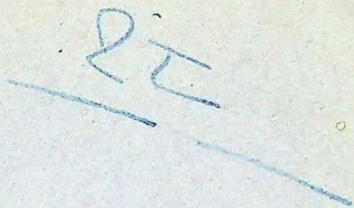






श्रीमान् बाबू नरसिंहप्रसादजी वकील, गोरखपुर ।

समर्पण।

श्रीमान् माननीय मुंशी नरसिंह प्रसाद जी
एम० ए० वकील हाईकोर्ट रईस,
गोरखपुरके करकमलोंमें।

श्रीमन्,

आपका वेदान्त-विषय से अत्यन्त प्रेम है। इसी प्रेम के कारण हमारा आपका साथ हुआ। वेदान्त के अनेक ग्रंथों को आपने हमारे साथ देखा है। इन सब कारणोंसे हमारा आपसे विशेष प्रेम होगया है। अतः इधर शान्ति की अवस्थामें जो जो विचार हमारे हृदय में उठे उन्हें पुस्तक के आकारमें लिख कर आपको प्रेमके साथ अर्पण करते हैं। आशा है कि आप इसे प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करेंगे।

श्रीमान् का
सच्चा शुभचिन्तक
शिवकुमार शास्त्री।

७-६-१९१८.

शान्तिदायी विचार ।

(१)

ईश्वर ।

जिसको कभी किसीने इन आंखोंसे नहीं देखा—जिसने कभी अपना अस्तित्व सिद्ध करनेके लिए किसीसे प्रयत्न नहीं किया—उसे माननेवाले यदि संसारमें बिल्कुल न होते या कम होते तो क्या आश्चर्य्य था? पर आश्चर्य्यका विषय यह है कि उसके माननेवाले ही अधिक हैं। अतः उस सच्चिदानन्द परमात्मा को मेरा भी नमस्कार है।

❀ ❀ ❀

तुम सुख वा शान्तिके लिए, वृत्त वा परिधिकी ओर दौड़ते हो—तुम केन्द्रको छोड़कर संसारमें भटकते हो, पर क्या वहां शान्ति मिल सकती है? कदापि नहीं। यदि तुम शान्ति और आनन्दके भूखे हो तो वृत्त, परिधि वा संसार को छोड़ कर, केन्द्रमें—भीतर—अपने आपमें—मनसे सिमिट कर, स्थित हो जाओ। यहीं शान्ति, आनन्द और सुखका भंडार है; यहीं सच्चिदानन्दका निवास है।

❀ ❀ ❀

बड़े २ विज्ञानवेत्ताओंने बड़े २ फिलासफरोंने जो कुछ आविष्कार किया है—जो कुछ लिखा है उसे वृत्त वा परिधि पर स्थित होकर नहीं—उसे बाहर स्थित होकर नहीं; किन्तु जो कुछ उन्होंने पाया है, केन्द्र में स्थित होकर अन्तर्मुख होकर—भीतरको सिमिट कर—अपनेमें होकर।

❀ ❀ ❀

बड़े बड़े महात्माओं और कर्मवीरोंने जो कुछ किया है, वह शरीर बलसे नहीं, वह बाहरी ज्ञानसे नहीं, किन्तु भीतरी ज्ञानसे और उसी आत्मबलसे, जहां पर कि सारी शक्तियों का, सारे बलका, सारे ज्ञानका, केन्द्र है और आनन्दका समुद्र है।

बुद्ध चैतन्य।

तुलसीदास, सूरदास और ईसा ये लोग तत्ववेत्ता वा विज्ञान-वेत्ता न थे, तथापि उनके अनुयायी तत्ववेत्ताओं और विज्ञान-वेत्ताओंसे अधिक हैं। इसका कारण यह है कि उनकी बातोंको, चाहे बुद्धि अंगीकार न करे, पर उनकी भक्ति-भरी बातोंसे आत्माको शान्ति मिलती है।

❀ ❀ ❀

"वह निर्दयी है वा दयावान"—यद्यपि सर्व साधारणको इसका निश्चय होना कठिन है पर एक तरहसे उनके निकटवर्ती, उसके परिचित, उसके भक्तलोग उसे दयास्वरूप ही बतलाते हैं।

तुम ईश्वरको मानते हो; पर उसपर दृढ़ विश्वास नहीं है। देखो, जिस समय तुम्हारा ईश्वर पर दृढ़ विश्वास होगा, तुम्हारे अन्तःकरणकी घबराहट मिट जायगी, तुम शान्त हो जाओगे और तुम्हारे हृदयमें एक ऐसी सुखकी लहर उठेगी जिसकी तुलना सांसारिक सुखोंके साथ नहीं हो सकती।

❀ ❀ ❀

यद्यपि यह विषय गूढ़ है पर अच्छी तरह विचारनेसे अवश्य समझमें आ जायगा कि अन्तःकरणका ही स्थूल रूप यह शरीर है। अतः जिस समय ब्रह्मज्ञानका उदय होगा—जिस समय ईश्वरपर दृढ़ विश्वास होगा—उस समय अन्तःकरण स्वच्छ, हलका, निष्पाप और शुद्ध हो जायगा। फिर क्या?

मानसिक रोगोंके नाश होते ही उसके स्वच्छ होते ही स्थूल शरीर भी स्वच्छ और नीरोग हो जायगा। पर यह अवस्था सुखके चाहनेवालोंको नहीं मिल सकती। यह अवस्था उनको प्राप्त होगी जो संसारिक सुखोंसे अलग ब्रह्मानन्दके भूखे और शान्ति-जलके प्यासे हैं।

---

(२)

योग।

जैसे हिमालयके निकट जानेपर ठंडी हवा शरीर को स्पर्श करने लगती है; उसी तरह, ईश्वरकी ओर झुकते ही, ब्रह्मानन्द और शान्तिकी हवा हृदयको स्पर्श करने लगती है। थोड़ी देर के लिए सांसारिक तापोंसे जला हुआ हृदय शीतल हो जाता है। यही कारण है कि कुछ न कुछ गति सबकी ईश्वरकी ओर है। यहां तक कि नास्तिक भी अपने ही तर्कोंसे स्वयं थककर इसी वायुमें विश्राम लेता है। इसी हवाको समाधिकी हवा और योगका संसर्ग कहते हैं। पर यह अवस्था समाधि और योगका रूप नहीं है किन्तु सविकल्प समाधिका स्थान इससे ऊपर है।

❀ ❀ ❀

यह मत जानो कि योग वा ईश्वरी ज्ञानसे मनुष्यकी शक्ति क्षीण हो जाती है वा वह गृहाश्रमके योग्य नहीं रहता वा यों कहिए कि उससे सांसारिक काम ही नहीं हो सकते; कभी नहीं। जिस तरह मनुष्य रात्रिमें सोकर फिरसे काम करनेके योग्य और श्रमरहित हो जाता है, उसकी इन्द्रियां ताजी और मन प्रफुल्लित हो जाता है, उसी तरह दिनमें एकबार कुछ देरके लिए ईश्वरमें चित्त लगानेसे सांसारिक विषयोंसे सर्वथा अलग हो जानेसे,

योगावस्थामें पहुँचकर समाधिका शान्ति सुख भोग लेनेसे, शरीरमें एक नवीन शक्ति, नवीन उत्साह और नवीन जीवन उत्पन्न होगा जिससे तुम अपने कर्तव्योंका इस खूबीसे पालन करोगे कि सांसारिक लोग उसे देख हैरान होंगे। योग मनुष्यों को मुरदा नहीं बनाता किन्तु जीवन डालता है। योगसे मनुष्यों की शक्ति क्षीण नहीं होती, किन्तु पुष्ट होती है। योगसे शारीरिक और मानसिक दोनों शक्तियां प्रबल होंगी और हृदयमें ब्रह्मज्ञानका प्रकाश होगा।

❀ ❀ ❀

ब्रह्मज्ञान कहता है कि विषयोंमें आसक्त मत हो—तुम उसके वशीभूत मत हो। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम उससे अलग हो जाओ या उसका उपभोग ही न करो; कभी नहीं। जो मक्खी अत्यन्त आसक्त होकर मधुपर कूद पड़ती है, वह उसे भोग नहीं सकती—वह उसी मधुमें लिपटकर मर जाती है।

❀ ❀ ❀

देखो! मक्खी, आई तो थी मधुको भोग करने, पर मधुने उसे ही भोग लिया—आई तो थी मधुको खाने, पर मधुने उसे ही खा लिया। कैसा आश्चर्य्य है! परन्तु एक बुद्धिमती मक्खी—आती है, वह आसक्तिरहित होकर मधुके किनारे—मधुसे अलग बैठ जाती है और धीरे धीरे सारे मधुको चाट जाती है और चाटकर उठ जाती है। अतः यदि तुम्हें विषयोंको भोगना है, अपने जीवनको आनन्दमय बनाना है तो विषयों की आसक्ति छोड़ दो—उसके अत्यन्त प्रेमसे अलग हो जाओ—उसके पास इस प्रकारसे रहो मानो तुम उससे किनारे हो। यह केवल सुन लेने या कह देनेकी बात नहीं है; आज ही से इसका साधन आरम्भ कर दो और देखो कि तुम्हारी आत्माके भीतर कैसे विचित्र और शान्तिदायी आनन्द उमड़ रहे हैं। इसी आनन्दकी

उमड़ को ब्रह्मानन्दकी उमड़ और उसकी लहर कहते हैं ।

❀ ❀ ❀

चाहे तुम संसारका प्रेम न छोड़ो—चाहे तुम विषयोंसे अलग न हो, पर समय आवेगा कि,—संसार स्वयम् तुम्हें छोड़ देगा—विषय स्वयम् तुमसे अलग हो जायँगे अतः तुम्हें, अन्तको जो छोड़नेवाला ही है—जो एक न एक दिन अवश्य अलग होगा, उसे आप ही क्यों नहीं छोड़ देते ? उससे आप ही अलग क्यों नहीं हो जाते ? स्मरण रहे, यदि किसीको तुम छोड़ दोगे—तो उसके वियोगका दुःख तुम्हें नहीं होगा, पर वियोगमें मर जाओगे । अतः ब्रह्मज्ञानका मार्ग पकड़ो और संसार के विषयोंसे अलग हो जाओ । पर याद रखना कि अलग होने और छोड़नेका अर्थ आसक्ति-रहित होनेसे है, न कि संसारसे भाग जाने से ।

❀ ❀ ❀

नदी आनन्दकी सामग्री है, आनन्दकी जगह है । पर यह आनन्द वही उठा सकता है जो नदीके ऊपर तैर रहा हो—जो उस नदीसे निकलकर उसको वशमें करे, जो उसके मस्तक पर घूम रहा हो—जो एक प्रकारसे जो उससे पृथक् और अलग हो । पर वही नदी उसके लिए नरक, दुःखदायिनी और मौत हो जाती है जो उसीमें डूब रहा हो, उसीके भीतर हो । ठीक यही दशा इस संसार रूपी नदी की भी है । यह संसार स्वर्ग है, आनन्ददायी है और अमृतत्वका देनेवाला है । पर उसीके लिए जो इसको वशमें कर, इससे विरक्त होकर, इसमें से निकलकर, इसके ऊपर विचर रहा हो; इसके ऊपर तैर रहा हो । क्या आप नहीं जानते कि पोखरेके भीतर कीचड़ होता है और ऊपर फूला हुआ कमल ? उसी जल और कीचड़से उत्पन्न होकर कमल क्यों इतना सुन्दर, सुडौल और सुगन्धित

है ? इसलिए कि वह पानीमें रहते हुए भी पानीसे अलग और बेलाग है।

❀ ❀ ❀

तुम लोगोंमें से कितने ऐसे हैं जिन्होंने संसारको नहीं भोगा है, किन्तु संसार ही ने उन्हें भोग डाला है। अन्नको नहीं खाया है किन्तु अन्न ही ने उन्हें खा डाला है। यही कारण है कि शरीर और मन तुम्हारे गुलाम नहीं किन्तु तुम्हीं उनके गुलाम हो—अब वे तुम्हारे वशमें नहीं किन्तु तुम्हीं उनके वशमें हो। रोते क्यों हो ? सारी दुर्बलता, सारी आपत्तियां, सारे रोग तुम्हारे ही बुलानेसे आए हैं—तुमने स्वयं उनको निमन्त्रण दिया है। नहीं तो सारा संसार तुम्हारे लिए है तुम संसारके लिए नहीं। शरीर और मन तुम्हारे गुलाम हैं—तुम उनके मालिक हो। विचार करो इस संसारको बनानेवाले, मालिक और ईश्वर तुम्हीं हो। अपनी अज्ञानतासे दुर्बल, रोगी और नीच बने हो।

समाधि।

कभी कभी हम लोगोंका मन तत्वविचारमें, सत्यकी खोजमें वा वैज्ञानिक रहस्योंके उद्घाटनमें, इस प्रकारसे तन्मनस्क हो जाता है कि वह थोड़ी देरके लिए संसारसे सर्वथा अलग हो, अपने विचारमें ही तन्मय होता है। इसी अवस्थाको योग-विद्यामें ज्ञान-धारणा कहते हैं। इसके बाद ज्ञान-समाधिकी अवस्था आती है। ज्ञान-समाधिकी अवस्था वह है, उस समय प्राप्त होती है, जिस समय पूर्वोक्त विचारतन्मय पुरुष, अपने लक्ष्य स्थान पर, अपने गन्तव्य स्थान पर, पहुँच कर, नीचे आनेकी बात वा संसारमें लौटनेकी बात भूल जाता है। ये अवस्थाएँ प्रायः ब्रह्म-विचार हीके समय प्राप्त हुआ करती हैं।

❀ ❀ ❀

कभी २ वैज्ञानिक लोग अपने लक्ष्य स्थान पर पहुँचकर अपने मन्तव्य विषयको जानकर, मनमें इतने प्रसन्न होते हैं कि उसी समय नीचे आजाते, और धारणा पदसे च्युत हो संसारमें गिर कर आनन्दसे उछलने लगते हैं। इन लोगोंको ज्ञान-समाधि प्राप्त नहीं होती, किन्तु ज्ञान-धारणाँ तक पहुँच कर नीचे गिर पड़ते हैं। यह अवस्था प्रायः उन तत्ववेत्ताओंकी हुआ करती है जिनका मन ब्रह्मज्ञानको छोड़कर, प्राकृतिक विज्ञान, पदार्थ विज्ञान वा सांसारिक आविष्कारोंकी ओर झुकता है।

❀ ❀ ❀

जिसका विचार मनस्तत्व की ओर झुकता है—जो ब्रह्म-विचारमें लगता है, वह कभी कभी एक ऐसी दशाको प्राप्त होता है—एक ऐसी वस्तुको पा जाता है—जो सुख दुःखसे परे सच्चिदानन्दरूप, परम पद और सर्वोत्तम पदार्थ है। वह एक ऐसा पदार्थ और एक ऐसी वस्तु है जिसे आप वास्तवमें वस्तु वा पदार्थ भी नहीं कह सकते। वहां वस्तु और अवस्तु कुछ नहीं; वह दूसरा नहीं केवल आपका सच्चा आत्मा है।

❀ ❀ ❀

इस अवस्थामें पहुँचकर मनुष्य जिस अनिर्वचनीय ज्ञानको प्राप्त होता है, वह ऐसा ज्ञान है कि न उसे जानकर मनुष्य सुखी होता न दुःखी ही होता है, किन्तु निज ज्ञानस्वरूप अपने आप को प्राप्त और समाधिमें स्थित हो जाता है। सुख वा दुःख दोनों ऐसे पदार्थ हैं कि इनका संसर्ग होते ही मनुष्य समाधिसे वा अपने स्वरूपसे गिर पड़ता है। यही कारण है कि पदार्थ-विज्ञान वा प्राकृतिक विज्ञानके ज्ञाता यद्यपि उसी जगहसे—उसी अवस्थाके निकटसे अपने नवीन आविष्कारोंको लाते हैं पर उस अवस्थाको प्राप्त नहीं कर सकते। पर यह बात याद रहे कि विना योग-पद, समाधि-पद वा धारणा-पदके निकट गए आप किसी

नवीन और आश्चर्य्यजनक यन्त्रका भी आविष्कार नहीं कर सकते। अतः योग और शान्तिमें स्थित होना सबके लिए आवश्यक है। शान्तिकी अवस्था विज्ञानकी कुंजी है।

❀ ❀ ❀

योगकी पूर्वोक्त अवस्था तक पहुँचनेवाले थोड़े देशोंमें पाए जाते हैं। पर जिस प्रकारसे अन्य देशवालोंका समाधि तक पहुँचना कठिन है उसी प्रकारसे भारतवासियोंके लिए इस समय किसी नवीन यंत्रका आविष्कार करना भी कठिन है। कारण कि प्राकृतिक विज्ञानके लिए बहुत सी सामग्रियों और रुपयोंकी आवश्यकता है जिसे वैज्ञानिक अपने अनुभव किये हुए ज्ञानकी परीक्षाओंमें विना किसी रोक टोकके लगा सकें। भारतीय वैज्ञानिकोंके पास रूपया नहीं है। पदार्थ-विज्ञानकी शिक्षा भी विना सामग्रीके नहीं हो सकती। पर ब्रह्मविचारके लिए वा उस अत्युत्तम सुख और सच्चिदानन्दको प्राप्त करनेके लिए रुपयों, सामग्रियों एवम् कष्ट-साध्य साधनोंकी भी आवश्यकता नहीं। वह एक ऐसा पदार्थ है जिसके लिए ग्रहणकी आवश्यकता नहीं, किन्तु जो कुछ तुम्हारे पास है उसे भी त्याग देना है। देखो, "शेष" इस पृथ्वीको धारण करनेवाला, सबमें व्यापक अन्तरात्मा है। विना शेष-पदके प्राप्त किये आनन्द और शान्तिका मिलना कठिन है।

❀ ❀ ❀

यहां पर आनन्द शब्द जिसके लिए प्रयोग किया गया है वह सुखसे भिन्न है। सुख सांसारिक और भौतिक है; पर आनन्द एक पारमार्थिक पदार्थ है। सुख भ्रमजन्य और काल्पनिक होता है, पर आनन्दमें यह बात नहीं है—वह सत्य और वास्तविक है। छोटे दुःखको—दुःखकी दवाको; थोड़ेसे दुःखकी निवृत्तिको सुख कहते हैं। जैसे लघु शंका वा शौचकी आवश्यकता

है उससे निवृत्ति होनेपर उसे एक प्रकारका सुख मालूम होगा। पर यह स्वयम् किसी प्रकारका सुख नहीं, किन्तु यह थोड़ेसे दुःखकी निवृत्ति मात्र है, और कुछ नहीं, कामजन्य सुख भी ऐसा ही है। कामदेवके प्रभावसे भोगकी ओर प्रवृत्ति होती है —लोग भोगमें सुख जानकर उसकी ओर दौड़ते हैं। पर होता क्या है? कामदेवरूपी रोग जब शरीरसे निकल जाता है, वही भोगविषय सुखमयसे दुःखमय प्रतीत होता है। अतः सिद्ध यही होता है कि स्त्री-सम्भोग स्वयम् सुख नहीं है किन्तु कामदेव रूपी रोगकी एक दवा है। भोगियोंके लिए कामदेव भी एक रोग है और इसीकी निवृत्ति को भोगी एक महान सुख मानता है; पर शान्ति नहीं मिलती। तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य जिस २ वस्तुके पास जहां २ जाता है, वहीं उन सभोंमें अन्तको दुःख ही पाता है। कारण कि सच्चा सुख बाहर नहीं है, भीतर है—संसार में नहीं है आत्मामें है—इसका नाम सुख नहीं किन्तु आनन्द है। यही आनन्द—यही आत्मा—यही दिव्य सुख—सत्य और चेतन होनेसे सच्चिदानन्द कहलाता है। अतः यदि सच्चिदानन्दको खोजना है, यदि उस परमात्मा की झांकी करनी है तो उठो बाहरसे मुड़कर भीतरकी ओर आओ और सच्चे आनन्द की लहर लो।

❀ ❀ ❀

याद रखना कि तुम पूर्वोक्त लहरमें स्नान करनेसे अयोग्य न हो जाओगे किन्तु यह वह लहर है जिसमें एकबार स्नान कर लेनेसे हृदयकी अविद्या, आलस्य और कपटता धुल उठेगी। आत्मबलसे निर्भयता और पुरुषार्थ चमक उठेगा—तुम्हारे कार्य्योंको देख कर लोग आश्चर्य करेंगे। क्या तुम नहीं जानते कि इसी लहरमें स्नान कर अर्जुनने महाभारत ऐसी लड़ाईको जीता था?

❀ ❀ ❀

जिस समय हृदयमें शान्ति देवीका निवास है—जिसके हृदयमें इतनी प्रसन्नता है कि उसकी मुखाकृति दिव्य आलोकसे चमक रही है—जिसके पास खड़े होते ही आलसियोंका भी आलस्य जाता रहता है—जिसकी प्रसन्नता और आनन्दकी लहरीने तमोगुणको धो बहाया है—उस महापुरुष, कर्मयोगी और पुरुषार्थीने निश्चय अपने आनन्द-स्वरूप आत्मा वा अपने अभिन्नदेव सच्चिदानन्दका साक्षात्कार किया है। ऐसा ही पुरुष सच्चा योगी, सच्चा संन्यासी और सच्चा गृहस्थ है। इतना ही नहीं किन्तु पृथ्वी पर रहते हुए भी वह एक जीवनमुक्त देवता है। ऐसे गृहस्थोंके दर्शन मात्रसे पाप छूट सकते हैं।

संसारका सच्चा स्वरूप।

१. संसार बड़ा ही कठोर और निर्दयी है। इसमें दुःखके सिवा आनन्द नहीं मिल सकता। जिस स्त्रीको हम प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते हैं—जिसने हमारे साथ प्रेम निबाहनेकी शपथ भी खा ली है—जिसके भरोसे हमने अपने जीवनकी नौका छोड़ दी है—जिसके साथ हमने कभी कपट और विश्वासघात नहीं किया—जिसके प्रेममें मग्न होकर, जिसके विश्वास पर, हम उसकी जंघाओं पर अपना सर रखकर सो गए हैं, क्या वही स्त्री हमें सोता हुआ देखकर, हमारे हाथों और पैरों को बांधकर, अपने सुकोमल हाथमें एक तेज छुरी लेकर हमारी गर्दनको रेत सकती है? क्या यह होना सम्भव है? हां, संसार में ऐसा होना असम्भव न समझो। संसार ऐसा ही निर्दयी और विश्वासघाती है। संसारमें ऐसी असंख्य घटनाएँ घट चुकी हैं। तुम भी जानते हो, पर असह्य होनेके कारण तुमने भुला दिया है। उपन्यासोंमें जो सांसारिक और काम्य प्रेम की

बातें हैं—वे झूठी और बनावटी हैं, उनपर कभी विश्वास मत करना। उपन्यासोंका पढ़ना छोड़ दो; उनके फेरमें मत पड़ो। संसारका वास्तविक रंग देखो—इसकी विवेचना करो; इसका कुछ और ही विचित्र और निराला रंग है। आज इसी समय कितने इस तौरसे दुःख पीड़ासे रोते, चिल्लाते और मर रहे होंगे कि यदि कोई दयावान उनके शब्दों या आह-भरी आवाजों को सुने तो वह पागल हो जाय: पर संसार अपने स्वार्थके कामोंमें इस प्रकारसे मग्न है कि उस ओर अपनी दृष्टि उठाकर देख भी नहीं सकता। संसार तू धन्य है! सहायता करनी कौन कहे, तू दुखियोंसे बात भी नहीं पूछता। तेरा यह विकराल चक्र सबको पीसता हुआ—सबको कुचलता हुआ, न मालूम किधरको चला जा रहा है—कौन जाने?

❀ ❀ ❀

माताएँ अपने प्यारे लड़कोंको खा गई हैं, लड़कोंने भी अपनी प्यारी माताओंको मार डाला है। युद्धक्षेत्रमें, लड़ाईके मैदानमें, कितने सैनिक चिल्लाते हुए—रोते हुए—बिलखते हुए, अपने हार्दिक मित्रोंकी भी कुछ परवा न करके उन्हींकी छातियोंको कुचल कर आगे बढ़ गए हैं। इसी प्रकार मेलोंमें भी एक यात्री दूसरे यात्रीको कुचल कर निकल जाता है, पर हृदयमें जरा भी दया नहीं आती। हा! संसारका—प्रकृति देवीका कैसा विकराल, घोर, निर्दय, और भयङ्कर स्वरूप है कि स्मरण करते ही सर चकराने लगता है। यही कारण है कि हिन्दुओंने प्रकृति देवीका महाकालीका स्वरूप महाभयंकर, निर्दय और क्रोधपूर्ण बनाया है। सचमुच इस प्रकृति देवीकी ऐसी ही चण्डी, संहारिणी और भयंकरी मूर्ति है जिसे सोचकर मनुष्योंका हृदय दहल उठता है। नित्य असंख्य प्राणी इस महाकालीके पेटमें जाते हैं—नित्य दबा कर कुचल कर चबा रही है, निगल रही है

पर इसका पेट नहीं भरता इसका क्या कारण ? लाखों इसके पैरों तले दबे हुए रो और बिलख रहे हैं। पर इसको दया नहीं आती, इसका क्या कारण ? ईश्वरने प्रकृतिको वा संसारको ऐसा निर्दयी और ऐसा दुःखमय क्यों बनाया ? इसका वास्तविक लक्ष्य, उद्देश्य और कारण क्या है ? उत्तर मिलता है—जीवोंकी उन्नतिके लिए जीवोंके उद्धारके लिए।

❀ ❀ ❀

आज यदि संसारमें इतनी विपत्ति और इतना दुःख न होता, तो, किसमें ऐसी सामर्थ्य और शक्ति थी जो इस स्वप्नवत असार संसारसे विरक्त होता और अपने सच्चे स्वरूपको प्राप्त कर सकता ? किसीमें नहीं।

❀ ❀ ❀

इतना दुःख होनेपर भी, बारम्बार कष्ट उठानेपर भी जब कि लोग संसारसे शीघ्र अलग नहीं होते, तो यदि इसमें सुख होता—यदि यह निर्दयी विश्वासघाती और दुःखमय न होता तो कब सम्भव था कि लोग इस कीचड़से निकल सकते और ब्रह्मपदको प्राप्त कर अपना उद्धार कर सकते। आज यदि यह इतना निर्दयी न होता तो हमारा कितना अनिष्ट होता इसे तुम्हीं सोच लो। अर्थात् ये जितने सामान और सामग्री हैं, तुम्हें जगानेके लिए, तुम्हें उठानेके लिए तुम्हें अपने सच्चे आत्माकी ओर मोड़नेके लिए। बिना दुःख उठाए किसीकी उन्नति नहीं होती, न हृदय स्वच्छ होता है।

❀ ❀ ❀

यह संसार अपने आत्मा हीका बनाया है। यह जब अपने स्वरूपसे गिर कर संसारमें चला तो संसारको प्रथम ही ऐसा बना कर चला था जिसमें हम अधिक काल तक इसमें न ठहर सकें—अधिक काल तक इसमें फँसे न रहें। इसे इसने जान कर

ऐसा बनाया है कि यदि हम अपने स्वरूपको भूलें तो सांसारिक दुःखोंके थपेड़ोंसे एकाएक जाग उठें और अपने त्यक्त सिंहासन पर फिर उठ बैठें। प्रकृतिदेवी या महाकालीकी संहारिणी और दुःखदायिनी मूर्तिका यही मुख्य उद्देश्य है और यही मुख्य लक्ष्य है। अतः यह सिद्ध होता है कि यह महामाया कालिका देवी—यह कठोर और निर्दयी संसार, तभी तक तुम्हें दुःख देगा—तभी तक तुम्हारे साथ कठोरता दिखलावेगा जबतक तुम स्वरूपमें नहीं जगे—जबतक तुम संसारसे विरक्त नहीं हुए जबतक तुम्हारा ज्ञान कच्चा है—जबतक तुमने ज्ञानका मार्ग दृढ़ नहीं पकड़ा। याद रक्खो जिस रोज तुम्हारा वैराग्य दृढ़ हो जायगा—जिस रोज तुम वेदान्तके ऊपर सचमुच खड़े हो जाओगे—जिस दिन केवल तुम्हारा वचन ही नहीं किन्तु तुम्हारा व्यवहार और हृदय भी वेदान्तको दृढ़ पकड़ लेगा—जिस दिन तुम योगावस्थाको प्राप्त करोगे उसी दिन यह संसार तुम्हारे लिये वैकुण्ठ, स्वर्ग और क्षीरसमुद्र होगा। तुम भी विष्णु बन कर इनको वशीभूत कर इनके ऊपर शयन करोगे—यह महाकाली प्रकृति देवी भी अपना भयंकर स्वरूप त्याग कर महालक्ष्मीका रूप बदल तुमारी सेवा करेंगी एवं जय और विजय तुमारे सामने हाथ जोड़े खड़े रहेंगे।

वेदान्त और योगकी महिमा।

२. बहुतसे वचन-वेदान्ती रोगी और दुःखी देखे जाते हैं। वास्तवमें वेदान्तमें शरीरकी भावना छोड़ कर आत्माकी भावना श्रेष्ठ मानी जाती है। इसीसे वे कहते हैं कि हम शरीर की परवा नहीं करते—यही कारण है कि हम दुःखी हैं। पर यह उनकी भूल और वेदान्तके सर्वथा विरुद्ध है। यह सत्य है कि आरंभ-

भावना श्रेष्ठ है। पर तुम इसे अच्छी तरह जानते हो कि जब इस शरीरके किसी अंगमें पीड़ा होती है—दुःख होता है, तो चित्त उसीमें लगा रहता है—उसका स्मरण बारम्बार होता है। ठीक इसी प्रकारसे जिसका शरीर रोगी, निर्बल और पीड़ित होता है उसे सर्वदा अपने शरीरकी चिन्ता लगी रहती है—वह सर्वदा अपने शरीरकी भावनामें व्यग्र रहता है और वेदान्तके लक्ष्य स्थानसे गिर जाता है। अतः निश्चय जानो कि न रोगी वेदान्ती हो सकता है न वेदान्तका ज्ञान होने पर रोग ही रह सकता है। स्थूल शरीरमें जो विकार वा रोग उत्पन्न होता है उसका कारण केवल अन्तःकरणका विकार वा रोग है, दूसरा कुछ नहीं। अतः जिस समय वेदान्तसे, ब्रह्मके साक्षात्कारसे, अन्तःकरणका मल नष्ट हो जायगा—जिस समय आनन्द-स्वरूप सच्चिदानन्दका दर्शन होगा, अन्तःकरण निर्मल और स्वच्छ हो जायगा। फिर क्या अन्तःकरणके स्वच्छ होते ही—अन्तःकरणके निष्पाप होते ही, यह स्थूल शरीर भी निष्पाप और निरोग हो जायगा? यदि अन्तःकरणमें कोई विकार—कोई कुबुद्धि—कोई पाप वा कोई कुकर्म न उदय हो—तो स्थूल कभी कुकर्मी और विकारवान् हो नहीं सकता। पर हमारे देशमें देशद्रोही, रोगी, अशक्त, कायर और अकर्मण्य लोग वेदान्ती और ज्ञानी समझे जाते हैं—यह एक बड़ी भारी भूल है। ज्ञानसे मनुष्य निर्मल और आनन्दपूर्ण होगा, निरोग होगा और पुरुषार्थी होगा।

❀ ❀ ❀

३. योगका स्वरूप केवल त्याग है। एक घण्टेके लिए सब कुछ त्याग कर एक आसनसे बैठ जाओ। चलना, काम करना, देखना, सुनना और बोलना सब कुछ त्याग दो। शुभ वा अशुभ, अच्छा वा बुरा किसी प्रकारका विचार मनके भीतर आने न

दो। ज्यों ही कोई विचार मनके भीतर घुसे उसे वहीं त्याग दो। इसी प्रकारसे प्रत्येक भावनाको मनसे निकालते जाओ। अन्तमें वही बच रहेगा जो तुम्हारा इष्ट है यह भी स्मरण रखना कि अन्तमें वह भावना भी त्यागना पड़ेगी जिस भावनासे तुमने सबका त्याग किया हैं।

४. जबतक चञ्चलता नहीं छोड़ोगे—जबतक विषयोंके दास बने हो—जबतक मनरूपी मदारी, तुम्हें विषयवासना रूपी डोरीमें बांधे हुए नचा रहा है—तबतक तुम्हें वह अनाहतध्वनि कभी श्रवणगोचर नहीं हो सकती जिसके सुननेसे आनन्द और शान्ति की लहर उठती एवं हृदयमें अमृतकी वर्षा होती है। यह अन्तः-करण एक बहुत बड़ा सरोवर है, इसमें जिस समय वासनारूपी पत्थर गिरता है यह चञ्चल हो उठता है और आनन्दस्वरूप परमात्माकी छाया लुप्त हो जाती है।

५. तुम योगको बहुत कठिन समझते हो, पर यह बात नहीं है, वह संसारके सारे कामोंसे सरल और आसान है। कठिन तो वह कार्य्य है जिसके करनेमें किसी सामग्रीकी आव-श्यकता हो—किसी पदार्थको खोजना हो—किसीको ग्रहण करना हो—कहीं जाना हो। पर यह तो वह वस्तु है जो तुम्हारा साक्षात् रूप है, तुम्हारे पास है। इसमें किसी वस्तुको ग्रहण करना नहीं—किन्तु जो कुछ तुम्हारे पास है उसे त्याग देना है। तुम्हीं सोचो बटोरने, बचाने और रक्षा करनेमें जो कठिनाई है वह त्यागने छोड़ने और फेंक देनेमें लुटा देनेमें कभी हो सकती है? कभी नहीं। तुमने जो कुछ जमा कर रक्खा है तम जिसे पकड़े बैठे हो, उसे वहीं छोड़ कर उठ जाओ यही योग है, यही त्याग है।

६. जिस समय ऊपरकी ओर चलोगे पहले पहल तुम्हें कुछ घबड़ाहट मालूम होगी, ऐसा बोध होगा मानो अब हमारा प्राण निकल जायगा। पर कर्मवीरोंको इससे डरना नहीं चाहिए, क्योंकि इस घबराहटमें किसी प्रकारका दुःख नहीं होता, केवल शंकासे मनुष्य अपनेको एक नई अवस्थामें देखकर एक नई घटनाको देखकर घबड़ा जाता है। पर यह दशा भी पहली ही बार होती है, दूसरी बारसे नहीं, फिर तो वह अपने घरका मार्ग हो जाता है। जिस समय तुम धैर्य धारण करके, निःशङ्क हो ऊपर चढ़ जाओगे तुम्हें ज्योति दिखलाई देगी कि तुम उसे देखकर ऐसे आनन्दमें मग्न हो जाओगे कि मुहँसे "अह हा!" यही शब्द निकल पड़ेगा। यह वह लोक है जहां शीतल प्रकाशपूर्ण तारोंके समान श्वेत मोतियोंकी वर्षा होती है। और हृदय अमृतके समुद्रपर लोटता हुआ विदित होता है।

❀ ❀ ❀

पर याद रखना कि यह उच्च कक्षा की समाधि नहीं है। इसका नाम है "सम्प्रज्ञात" समाधि, 'निर्विकल्प' वा 'असंप्रज्ञात' समाधि इसके भी ऊपर, है—इसके भी परे है। पर रास्ता यही है।

❀ ❀ ❀

१—पतंग रूपी जीवात्मा यदि आकाश रूपी संसारमें उड़ना और घूमना चाहता है तो उड़ै और विहार करै, कुछ हानि नहीं। पर एक बातका ध्यान रहे कि, वह आत्मज्ञान रूपी डोरी जो सुरति और ध्यानरूपी बालकके हाथमें है, टूटने न पावे। स्मरण रहे कि जो इस डोरीका ख्याल न करेगा—इसपर ध्यान न देगा, उसकी यह अमूल्य डोरी अवश्य टूट जायगी और उसका सम्बन्ध परमात्मासे छूट जायगा। फल यह होगा कि

कुछ देर तक इधर उधर भटक कर नीचे गिरेगा और अज्ञानरूपी बालक उसे लूट कर उसका नाश कर डालेंगे।

❀ ❀ ❀

२—पूर्वोक्त डोरी बहुत ही सूक्ष्म है। अतः इसकी रक्षाके लिये अत्यन्त सूक्ष्म, सूक्ष्मातिसूक्ष्म वेदान्तज्ञान वा ब्रह्मज्ञानकी आवश्यकता है। अतः इसपर खूब ध्यान रक्खो और इसे कभी चित्तसे न उतारो। देखो! यदि इस विषयवासना रूपी आंधीमें तुम्हारी डोरी न टूटी; जीवात्मारूपी पतंगका सम्बन्ध परमात्मा रूपी बालकके हाथसे न छूटा, तो याद रहे कि सन्ध्या समय परमात्मा की कृपादृष्टि रूपी चर्खी अवश्य घूमेगी और पूर्वोक्त थका हुआ पतंग सच्चिदानन्दके निकट खिंच आवेगा। वहां वह पतंग आनन्दके समुन्द्रमें गिरकर वा गलकर अपने सच्चे अद्वैत रूपको प्राप्त होगा।

❀ ❀ ❀

३—सम्राटके सामने डाका नहीं पड़ता—गंगाके तटपर बैठनेवाला प्यासा नहीं रहता। इसी प्रकारसे जिसके हृदयमें परमेश्वर विराजमान् है, जो ईश्वरका सच्चा प्रेमी है, उसके पास मोह और शोक कभी ठहर नहीं सकता। देखो! जो ईश्वरका सच्चा प्रेमी है—जिसका ईश्वरपर पूर्ण विश्वास है; केवल कथन-मात्रका प्रेमी वा ज्ञानी नहीं है किन्तु ईश्वरपर दृढ़ भरोसा है—उसे किस बातकी चिन्ता होगी? किस बातकी उद्विग्नता होगी? कौनसा मानसिक क्लेश होगा? कोई नहीं। और मानसिक क्लेशोंके अभावसे शारीरिक क्लेश तो आपसे आप मिट जायँगे; उनका कहीं पता भी न लगेगा। अतः यदि तुम आनन्दके भूखे और शान्तिके प्यासे हो तो परमात्माकी ओर सिमटो, झुको और लौट आओ। वह तुम्हारे भीतर और तुम्हारे पास है। इधर उधर भटकनेसे शान्ति और आनन्द नहीं मिल सकता।

❀ ❀ ❀

४—फतिंगा स्वयम् चिराग़की ज्योति नहीं है किन्तु उसका एक प्रेमी है। पर ज्योतिका सच्चा प्रेम उसे भी ज्योति बना देता है। सच्चे और निःस्वार्थ प्रेममें मस्त होकर वह चिराग़की ज्योति पर कूद पड़ता है और आनन्दसे जलने लगता है। इस समय क्या वह अपनेको फतिंगा कह सकता है? कभी नहीं। अब प्रेम वा भक्तिने उसके द्वैत भावको जला डाला। अब वह आनन्दस्वरूप अद्वैतस्वरूप और ज्योतिस्वरूप है—दूसरा कुछ नहीं। तुम यदि अद्वैत तत्व को नहीं समझते—तुम यदि अद्वैतवादको सुनकर हँसते हो—तो आओ, वादाविवादकी आवश्यकता नहीं, प्रेम और भक्तिके तत्वको समझो—प्रेमके सरोवरमें गोता लगाओ—अद्वैतका तत्व आपसे आप समझ जाओगे। देखो! जिस समय तुम ईश्वरके सच्चे और पूर्ण प्रेमी बनोगे; जिस समय तुम ईश्वरके प्रेममें लीन हो जाओगे, उस समय तुम्हारा द्वैतभाव मिट जायगा, और जब द्वैतभाव मिट गया तो दुःख कैसा, चिन्ता कैसी और शोक कैसा? जहां अपने आत्माको छोड़कर दूसरा कुछ है ही नहीं वहांपर रोग और दोष कैसा? वहांपर विपत्ति और संकट कैसा? वहां तो केवल आनन्दका अखगड और सर्वव्यापक समुद्र है, जिसमें केवल शान्तिकी लहरें उठती हैं।

❀ ❀ ❀

शान्तिलाभके उपाय।

१—तुमने जिसका उपकार किया है, तुमने जिसकी भलाई की है, तुम चाहते हो कि वह तुम्हारा कृतज्ञ बने; वह तुम्हें उस का बदला दे यह बड़ी अज्ञानता है। इस विचारका मनुष्य सर्वदा दुःखित रहता है कभी प्रसन्न नहीं रहता। सच्ची बात तो यह है कि जिसका उपकार तुमने किया है उसे तुम्हारा कृतज्ञ,

नहीं होना चाहिए किन्तु तुम्हें उसका कृतज्ञ होना चाहिए कि उसके कारण तुम्हें ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ कि तुम उपकारी बन सके। उपकारियोंकी आत्मोन्नति होती है, प्रतिष्ठा और नाम होता है। अतः उपकारियोंको उसका कृतज्ञ होना चाहिए—जिसकी दीनता, जिसकी विपत्ति और जिसके दुःखके कारण वे इस ऊँची पदवी और बड़ी प्रतिष्ठाको प्राप्त कर सके कि आज एक उपकारी पुरुष कहलाते हैं। देखो! दुःख और दुस्समय उसपर पड़ा पर उससे लाभ उठाया तुमने। अतः किसे किसका कृतज्ञ होना चाहिए इसे तुम्हीं विचार लो। यदि तुम उद्विग्नता को दूर करना चाहते हो, यदि तुम हृदयमें शान्ति और सुखका राज्य चाहते हो तो नेकी और उपकारके बदलेकी इच्छा दूर हीसे छोड़ दो। उपकार करके तुम स्वयं उसको प्रणाम करो और उसका कृतज्ञ होओ। आनन्द स्वरूप होनेका यही एक साधन है; शांतिकी यही एक कुंजी है।

❀ ❀ ❀

२—तुम किसीके अनन्यप्रेमी हो, सच्चे प्रेमी हो; तुम उसे हृदयसे मानते हो; मानो। पर स्मरण रहे कि यह कभी मत चाहना कि वह भी हमें उतना ही माने जितना कि हम उसे मानते हैं। कभी प्रेमका बदला मत मांगो; सच्चे और अनन्य प्रेमका जो बदला है वह तुम्हें मिल रहा है। तुम्हारे आत्माकी उन्नति हो रही है, सच्चे प्रेमसे तुम्हारे हृदयका पट खुल गया है; मायाका पटल आत्मासे अलग हो गया; हृदय स्वच्छ, हलका और निष्पाप है; विषय वासनाओंका सम्बन्ध बिलकुल न रहा। अहा! देखो कैसा आनन्द है! कैसी शान्ति है! सच्चे प्रेमका सच्चा बदला, सच्चा फल यही है। पर यह तभी हो सकता है जब तुम अपने प्रियसे, अपने प्राणप्रिय वा प्रियतमसे अपने प्रेमके बदलेमें उसके प्रेमकी इच्छा न करो; किसी प्रकारकी कृतज्ञता

वा बदला न चाहो। जो प्रेमका बदला चाहता है वह रात दिन जलता और दुःखित रहता है, उसे कभी चैन नहीं पड़ता। वह कहता है कि प्रेम बन्धन है, प्रेम दुःख है। वह रात दिन इसी खोजमें रहता है कि कहीं उसका प्रेम हमसे कम तो नहीं है, कहीं उसका प्रेम दूसरेसे तो नहीं है, यही बन्धन और दुःख है। पर निस्स्वार्थ प्रेमी बन्धन-रहित होता है, वह सर्वदा मुक्त और आनन्दस्वरूप है; उसे किसी प्रकारका दुःख नहीं। स्मरण रक्खो प्रेममें दुःख नहीं है; प्रेममें बन्धन नहीं है, बन्धन है बदले की इच्छामें—फलकी इच्छामें। प्रेमका मार्ग दुःखस्वरूप जान-कर, मनुष्यसे काठ वा पत्थर मत बनो। संसारमें उसका जन्म निष्फल है जिसने प्रेमका मार्ग नहीं पकड़ा; वह मनुष्य नहीं, वह चेतन ही नहीं, वह आत्मा ही नहीं, जिसमें प्रेम नहीं। प्रेम हीनआत्मा जड़ है, प्रेमहीन मनुष्य मृतक है। पर यदि तुम आनन्दस्वरूप होना और मुक्त होना चाहते हो तो निस्वार्थ और सच्चे प्रेमका मार्ग पकड़ो। निःस्वार्थ और सच्चा प्रेम सुख का सच्चा रास्ता है।

❀ ❀ ❀

३—अच्छे उपदेशोंको बारम्बार पढ़ो, मनन करो और उस के अनुसार नित्य यत्न करो। अभ्यास करते करते, यत्न करते करते, वही तुम्हारा स्वभाव हो जायगा। फिर उससे लाभ उठा सकते हो, केवल एक बार पढ़ लेनेसे कोई उपदेश शान्तिदायी नहीं हो सकता जबतक कि वह व्यवहारमें न लाया जाय।

वैराग्य से आनन्द।

१—बड़ेसे बड़े कष्टका सामना करते हैं, दुर्गम और गहन स्थानोंमें भी प्रवेश कर जाते हैं, पर मनका उत्साह भंग नहीं

होता। क्यों? किसकी खोजमें? आनन्दके लिये, आनन्द की खोजमें। लौकिक वा पारलौकिक चाहे कोई कार्य्य हो यदि आप उसमें जी जानसे लगे हैं तो इसी वास्ते कि ऐसा करनेसे आनन्द की प्राप्ति होगी; सुख मिलेगा। पर किसी कार्य्यमें सुख कब मिलता है इसपर बहुतोंने विचार नहीं किया है। आपको मिठाई न मिलनेसे दुःख क्यों है? इसलिए कि आपको मिठाई की इच्छा है। आपको मिठाई मिल गई; आपने मिठाई खा ली; आपको सुख मालूम हुआ। इस सुखका कारण यह है कि अब आपसे मिठाई की इच्छा निवृत्त हो गई; थोड़ी देरके लिए अब आपको मिठाई खाने की इच्छा न रही; उससे संतोष हो गया। यही इच्छा की निवृत्ति, वैराग्य वा संतोष ही आनन्दका कारण है।

२—आपका किसी स्त्रीसे कामजन्य प्रेम है, आप उसका समागम चाहते हैं—आप उसके लिए दुःखी हैं—आप उसकी प्राप्तिके लिए प्राणपणसे यत्न करते हैं। कुछ दिनोंके बाद वह स्त्री मिल गई, आपने उसके साथ समागम किया; आपको सुख या आनन्द मिला। कब? जब समागम करनेसे थोड़ी देरके लिए भोगकी इच्छा निवृत्त होगई, भोगमें वैराग्य उत्पन्न हुआ, भोगसे संतोष हुआ।

३—सिद्धान्त यह निकला कि हमें भोग वा संसारमें भी आनन्द उसी क्षणमें मिलता है जब हृदयसे इच्छा की निवृत्ति हो जाती है। मन भोग की ओरसे फिर जाता है; हृदय के भीतर संतोष और वैराग्य उत्पन्न होता है। अतः विचार करनेसे सुख और आनन्दका वास्तविक स्वरूप वैराग्य और संतोष ही मालूम होता है।

४—वह मनुष्य जो संसारके विषयोंसे विरक्त नहीं—जिसमें संतोष नहीं—वही दुःखी और दीन है; उसी मनुष्यका आत्मा जीवात्मा कहलाता है। पर जिसका मन संसारसे सर्वथा निवृत्त हो गया है, हृदयमें सच्चा संतोष और वैराग्य उत्पन्न हुआ है—उसका आत्मा जीवात्मा नहीं—वह परमात्मा हो चुका—वह सुख स्वरूप, आनन्दस्वरूप, साक्षात सच्चिदानन्द ईश्वर है।

यदि एक घंटेके लिए भी आपमें सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो जाय तो आप अपने आत्माके भीतर उस आनन्दस्वरूपको अवश्य पावेंगे जिसे परमात्मा कहते हैं। अतः वह मनुष्य धन्य है—वह जीवन्मुक्त है—जिसके हृदयमें संतोष और वैराग्य विराजमान हैं; क्योंकि वैराग्य ही आनन्दका मूल और सुखका पिता है।

ब्रह्ममार्गमें आलस्य नहीं है।

१—कुछ लोगोंका यह कथन है कि संतोषसे ही भारत ऐसी अवनत दशाको प्राप्त है। पर यह नितान्त भूल है। क्या भारत में जिसकी गिरी दशा है वे सब संतोषी हैं? कदापि नहीं। वे तृष्णाकुल हैं, भोगलोलुप हैं; क्षुद्र वासनावाले, विद्याहीन, आलसी, अकर्मण्य और अज्ञानी हैं। किसीकी ज़मींदारी बिकी है—किसीने अपना व्यवसाय भ्रष्ट किया है तो उसका कारण संतोष नहीं किन्तु उसका कारण विषय भोगकी अधिकता, अज्ञानता और आलस्य ही निकलेगा। अज्ञानता हीके कारण आप संतोष का सच्चा अर्थ नहीं जानते और उसके मत्थे दोषारोपण करते हैं। सच्ची बात तो यह है कि जिस जातिमें अज्ञानताके कारण विषयलोलुपता अधिक हो जाती है उस जातिका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता हैं; वह निर्बल हो जाती है। वीर्य्यहीन जातिके पुरुष

निर्बल, उत्साहहीन, अकर्मण्य, आलसी, कमजोर और रोगी होते हैं। ठीक इसी प्रकारसे जो संसारासक्त नहीं हैं—जो विषयी और विषयलोलुप नहीं वह वीर्य्यवान, बलवान, पुरुषार्थी, कर्मवीर, रोगमुक्त, उत्साहयुक्त, और आलस्यहीन होता है।

❀ ❀ ❀

एक गूढ़ न्याय है कि, जो निष्काम कर्ममें लगा रहता और कर्मण्य होता है, उसका मन विषयोपभोगमें लिप्त नहीं होता, उसके हृदयके भीतर विषय-वासनाएँ नहीं आतीं, उसका चित्त एकाग्र और हृदय निश्चल रहता है। परन्तु जिसका शरीर काम नहीं करता और अच्छा २ भोजन करके बैठा रहता है उसका मन विषय-वासनाओंमें दौड़ा करता और कभी शान्ति नहीं पाता है।

❀ ❀ ❀

२—शरीरका धर्म काम करना है, शरीर कामहीके लिये बनाया गया है; यदि देखिए तो एक क्षण भी शरीर, बिना कामके नहीं रह सकता। विशेष कर वैराग्य उत्पन्न होनेपर--विषयोंसे अलग होनेपर—शरीर विशेष शक्तिशाली और नीरोग हो जाता है। उस समय वह विना कामके नहीं रह सकता। ऐसे समयमें विरागीका शरीर निष्काम कर्ममें वीरताके साथ लग जाता है और हानि लाभमें समबुद्धि होकर अपने कर्त्तव्यकर्मको पूरा कर दिखाता है।

विना विषयवासनाको दूर किये किसीको अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ज्ञान नहीं होता। विषयवासना, फलेच्छा, असंतोष और तृष्णा ऐसी वस्तुएँ हैं जो मनुष्यको रोगी और निर्बल बना देती है। अतः जो रोगी और निर्बल है उससे काम और उन्नति की आशा व्यर्थ है। आप सन्तोषके सच्चे अर्थ को समझिए।

सन्तोषका अर्थ निष्कर्मण्य होना नहीं है क्योंकि जब तक शरीर में प्राण हैं तबतक निष्कर्मण्य होना असम्भव है। सन्तोषी और असन्तोषीमें भेद केवल इतना ही है कि सन्तोषी अपने कर्त्तव्य कर्मको वीरताके साथ पूरा करता और असन्तोषी रोगी होकर बैठा मक्खी मारता है काम दोनों करते हैं। एकका काम उत्तम और दूसरेका निकृष्ट है। असन्तोषी और विषयी पुरुषोंका काम ऐसा है जो नहीं के बराबर होता है। अतः सन्तोषी, योगी और विरक्त ही सच्चे कर्मण्य और कर्मवीर हैं, अन्य नहीं। अन्य कर्मण्य होते हुए भी अकर्मण्य हैं। इसलिए सन्तोषका सच्चा अर्थ समझो, मनुष्योंके लिए सन्तोष और वैराग्यसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणप्रद और शान्तिदायी मार्ग नहीं है।

❀ ❀ ❀

३ जो आलस्य और निष्कर्मण्यतासे विरक्त नहीं हो सकता उसका विषयोंसे विरक्त होना असम्भव हैं। जो आलस्य पर विजयी नहीं वह विषयों पर विजयी कैसे हो सकता है? जो विद्याभ्यास नहीं कर सकता वह योगाभ्यास क्या कर सकता है? जो गीदड़ देखकर भी डर जाता है वह सिंहका शिकार कैसे करेगा? सिंहके शिकारके समय जैसी वीरता, फुर्ती, और चैतन्यताकी आवश्यकता है ठीक वैसी ही वीरता, विचार, विद्या और चैतन्यता विषयरूपी सिंहको जीतनेके लिए भी आवश्यक है। बल्कि सिंहपर विजयी होना आसान हैं, वह थोड़े ही परिश्रम और युक्तियोंसे जीता जाता है पर विषयों पर विजयी होना बहुत ही कठिन है; इसको कोई विरला ही जीतता है। सिंहका जीतनेवाला वीर नहीं है; वीर वह है जिसने विषयों को जीता है। श्रीरामचन्द्रके समयमें "महावीर" उसीका नाम था जो ईश्वरका पूर्ण भक्त, सच्चा ब्रह्मचारी और संसारसे सर्वथा

विरक्त था। रामके हाथसे रावण और बालि ऐसे बली उसी समय मारे गए जिस समय उनका मन विषयलोलुप और विषयोंका दास बन रहा था। रावण और बालि यदि उस समय विषयी न हुए होते तो उनपर विजयी होना असम्भव था। द्रौपदीका चीर खींचनेवाला विषयी दुर्योधनकी पराजय और गीताका सुननेवाला कर्मयोगी अर्जुनकी जीत क्या प्रकट करती है? इसे विचारिए और इसका मनन कीजिए। थोड़े ही अभ्यासके अनन्तर वह शान्तिदायी वैराग्य उत्पन्न हो जायगा जिसका आश्रय हमारे बड़े २ ऋषियों और महात्माओं ने लिया है—जिसमें सिवाय आनन्दके दुःख नहीं देखा गया।

❀ ❀ ❀

४ खूब कसरत कीजिए, योगाभ्यास कीजिए और बड़ी मेहनतके साथ अपना काम करते रहिए। इससे यह चञ्चल मन थका रहेगा और विषयोंकी ओर न दौड़ेगा। शरीरसे काम न लेनेपर—बेकार रहने पर—मन विषयोंका दास बन जाता है और मनुष्योंको सांसारिक भोगोमें पटक देता है। यह भोग ही शान्तिका नाशक और त्रिविध रोगोंका उत्पादक है। पाठशाला की छुट्टियोंमें लड़के, कचहरीकी बड़ी छुट्टियोंमें अमले, प्रवाह रुकनेपर नदियाँ और पेनशन पाने पर सिपाहीगण प्रायः रोगी पाये जाते हैं। जिसे कामसे छुट्टी नहीं उसे मरने और बीमार पड़नेकी भी फुर्सत नहीं मिलती। मृत्युका मुख्य द्वार आलस्य है। मृत्यु भी खड़े और काम करते हुए मनुष्यसे डरती है। यह प्रायः उसीके पास देखा गया जो चारपाई पर लेट रहा है। आलसी और शक्तिहीन पर सभी आक्रमण करते हैं। अतः विषतुल्य विषयोपभोग जो मनुष्यको आलसी और शक्तिहीन बना देता है उससे प्रयत्न करके अलग हो जाओ। यह विद्वानों और वीरोंका परम पुरुषार्थ और परम कर्तव्य है। संसारके बड़े बड़े दार्श-

निक, बड़े बड़े वैज्ञानिक, बड़े बड़े आविष्कर्त्ता और बड़े बड़े समर-विजयी वही हुए हैं जो सांसारिक विषयोपभोगमें आसक्त न थे।

❀ ❀ ❀

५ अधिक उपयोगी विषयोंका जाननेवाला पूजनीय, बन्दनीय वा श्रेष्ठ कभी नहीं हो सकता; श्रेष्ठ वह है जो उसके अनुसार आचरण भी करता है। वैराग्य, सन्तोष, वेदान्त और योगपर अच्छे २ निबन्धों और लेखोंको लिख लेने वा पढ़ लेने से कुछ लाभ नहीं है, लाभ उसके अनुसार अभ्यास करने और चलनेसे होता है। कुछ लोगोंको पुस्तक पढ़नेका व्यसन होता है। अच्छीसे अच्छी पुस्तकको पढ़ डालते हैं; सर्वदा पुस्तकावलोकन क्रिया करते हैं। लेखककी लेखनशैली और उसकी भाषाकी सरसता, प्रौढ़ता और सुन्दरतापर विचार करते और मग्न रहते हैं, पुस्तकके कीड़े बन जाते हैं। पर उस से उनका लाभ कुछ भी नहीं होता।

❀ ❀ ❀

६ पुस्तकोंके पढ़नेवाले विषयोंको जान लेते हैं—उस पर दूसरेको शिक्षा दे सकते हैं—उसपर व्याख्यान दे सकते हैं—उन पठित विषयों पर अच्छेसे अच्छा लेख लिख सकते हैं—पर इससे स्वयं उनका उद्धार नहीं हो सकता; न उनके हृदयको सच्चा आनन्द या सच्ची शान्ति मिल सकती है। अतः पढ़ने, सुनने और बात चीत करनेसे अधिक समय साधन करनेमें—आचरण करनेमें—अपने बुरे स्वभावोंके जीतनेमें—लगाओ। आत्मोद्धारका यह सबसे अच्छा और सच्चा रास्ता है। मित्रोंकी गपशप, समाचारपत्रोंका अधिक पढ़ना, उपन्यासोंमें दिल बहलाना इत्यादि और भांग, गांजा, शराब, हुक्का, सुरती, पानादि व्यर्थ व्यसनोंको छोड़कर अपना अमूल्य समय बचाओ और वह समय योग-साधन, आत्मचिन्तन और ऐसे विचारोंमें

लगा दो कि जिस उपदेशको हमने पढ़ा है उसके अनुसार चलनेमें कितनी सफलता प्राप्त की है. कितनी बाक़ी है। बारम्बार ऐसा विचार करनेसे—बारम्बार चिन्तन करनेसे—तथा जब जब मन और शरीर सिद्धान्तके विरुद्ध चले उसे बारम्बार चैतन्यताके साथ रोकनेसे कुछ दिनोंमें तुम सफलमनोरथ हो जाओगे। पर बड़े धैर्य और पुरुषार्थकी आवश्यकता है। तथापि रूचवे साधकोंके लिए अति सरल और सुगम है।

दुःख-रहस्य ।

१—सुखकी इच्छा ही ने दुःखको उत्पन्न किया। जीवात्मा को जब सुखकी इच्छा हुई, उस समय उसने दुःखपूर्ण संसार की कल्पनाकी—इस जगत्‌को उत्पन्न किया। यदि सुखकी इच्छा उत्पन्न न हुई होती तो यह संसार और उसका दुःख भी उत्पन्न न हुआ होता। विना दुःखके सुखका ज्ञान हो ही नहीं सकता। मीठे मुँह शर्वतकी मिठाई नहीं मालूम होती-बिना भूँखका दुःख उठाए भोजनका सुख अनुभवमें नहीं आता। अतः यह निश्चित है कि सुखके लिए, दुःख हमने ही उत्पन्न किया; दुःख हमारा बनाया हुआ हमारी इच्छा है। फिर जो वस्तु हमारी बनाई हुई है—जिसे हमने स्वयं निमन्त्रण दिया है—उसके आने पर, घबड़ाना, उसको सहन न करना, सिवाय मूर्खताके और क्या हो सकता है? यदि तुम दुःख उठाना नहीं चाहते, सुखकी इच्छा छोड़ दो—सुखमें सुखी न हो। सुखमें प्रसन्न न होनेसे, दुःख सहनेकी शक्ति आपसे आप आजायगी; ऐसी अवस्थामें आपसे आप मनमें दुःखका अनुभव नहीं होता। जो पुत्रके जन्म लेनेपर सुखी नहीं होता, वह उसके मरनेपर भी कदापि दुःखी न होगा। जो सुखमें अभिमान नहीं करता—जिसका मन व

स्वभाव सुखमें नहीं बदलता—वह दुःखमें कदापि विचलित नहीं हो सकता। उसके लिए संसार ही स्वर्ग है—संसार ही विष्णुलोक, शिवलोक और स्वर्ग है—जिसने सुख दुःखको जीत लिया, जिसका चित्त सुख-दुःख, मानापमान और लाभ हानिमें समान है। वह मनुष्य भाग्यवान् और धन्य है—वह स्वयं, इन्द्र, विष्णु और शिव है जिसपर सुख और दुःखका प्रभाव नहीं पड़ता—जो सुख और दुखसे बिलकुल अलग है। अतः वेदान्त कहता है कि समानता धारण करो, समत्व ही आनन्दका कोश और शान्तिका समुद्र है।

२—जैसे दिनके बाद रात, और रातके बाद दिन बराबर आता और चला जाता है, उसी तरह सुखके बाद दुःख और दुःख के बाद सुख बराबर आता और चला जाता है। सच्ची बात तो यह है कि रात और दिन ये दोनों परस्पर एक दुसरेके कारण हैं। इनमें से एक, दूसरेको, उत्पन्न करनेके लिए आता, और उसे उत्पन्न कर चला जाता है। अतः जो दुःख, सुखको उत्पन्न करनेके लिए आया है-जो सुखका कारण है-जो सुखका पिता है-जो मनुष्यको इस योग्य बनाता है कि उसके पास सुख आ सके-उस दुःखको देखकर घबड़ाना अज्ञानता और मूर्खता है। ऐसे—दुःखको पाकर प्रसन्नताके साथ सहन करो-उसका स्वागत करो उससे भयभीत होना मानो अपनेको मृत्युके मुखमें डाल देना है। यदि तुम अपने आत्माकी उन्नति और अपने हृदयमें शान्ति चाहते हो, तो वीरताके साथ—प्रसन्नताके साथ—दुःखका सामना करो। केवल सांसारिक धन वा बल वा केवल पुस्तकों के पढ़नेसे हृदयमें शान्तिकी धारा न बहेगी।

३—जैसे संसारकी और वस्तुएँ अनित्य और नाशमान् हैं, उसी तरह दुःख भी अनित्य और नश्वर है। इस बातको खूब

दृढ़ जान लो कि जिस समय तुमारे हृदयमें इसका निश्चय हो जायगा, दुःखरूपी भूत कभी अपना प्रभाव न डाल सकेगा। देखो जिसे न्यायाधीशने यह सुना दिया कि तुम्हें एक महीनेके बाद फांसीकी सजा मिलेगी, उसका फांसीके पूर्वका सारा दिन व्यर्थ है—वह उसी रोज मर चुका। कारण इसका यह है कि जिस समयसे, किसी सुख वा दुःखके आनेका दृढ़ निश्चय हो जाता है, उसका प्रभाव उसी समय पड़ने लगता है। अतः आपको यदि इसका दृढ़ निश्चय हो जाय कि दुःख नाशमान् अनित्य, शीघ्र कट जाने वाला वा आगमापायी है तो वह आपको दुःखी नहीं कर सकता। जिसमें तितीक्षा नहीं है—जो दुःखको नहीं सहता—उसका दुख भी रोने वा चिल्लानेसे कम नहीं होता किन्तु और अधिक दुःखदायी होता है। अतः जो दुःख तुम्हारे ऊपर पड़ा है उसका सहन करो; सहन करनेसे दुःख कम हो जाता है—शीघ्र कट जाता है। जब बहुत गर्मी पड़ती है तो आंधी आपसे आप आजाती है—चारो ओरसे टूट पड़ती है। ठीक इसी तरह जहांपर दुःख होता है, वहां, सुख आपसे आप टूट पड़ता है। इस सिद्धान्तका यह मतलब नहीं है कि तुम दुःखके दूर करनेका उद्योग न करो—कभी नहीं। किन्तु, इस सिद्धान्तके अनुसार जो घबड़ाता नहीं—डरता नहीं—चिल्लाता और रोता नहीं वही दुःख काटनेका उद्योग भी कर सकता है। पर जो दुःखमें घबड़ा गया—दुःखमें अपने सच्चे स्वरूपको भूल गया—वह उद्योग क्या कर सकता? ऐसे मनुष्यका जीवन अन्धकारमय है।

अपना गुरु आप।

४—दूसरेकी शिक्षासे आचरण शुद्ध नहीं हो सकता, बल्कि हृदयमें ईर्षा, क्रोध और द्वेष उत्पन्न होता है। अतएव

अपना सच्चा गुरु अपना आत्मा ही है। अतः यदि उन्नति की सीढ़ी पर पैर रखना है तो अपने आत्माको अपना गुरु बनाओ उसीसे दीक्षा लो। तुम्हारेमें जो कमी है—तुम्हारेमें जो त्रुटि है—तुम्हारेमें जो बुरे स्वभाव हैं—उनपर नित्य ध्यान दो; उन्हें दूर करनेका नित्य प्रयत्न करो। आज हमारी इतनी कमी दूर हुई—अभी हममें इतनी त्रुटियां रह गई हैं—अभी हम ब्रह्मविद्या के अमुक २ अंशका पालन नहीं कर सके हैं—इन विषयोंपर नित्य विचार करो। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो—यदि तुम्हें अपने जीवनका सुधार करना है तो अपने मन-रूपी घोड़े की लगाम अपने आत्माके हाथमें देकर सर्वदा सतर्क रहो। इनका रोकना तुम्हारा ही काम है, यह दूसरेसे नहीं हो सकता। अपने मनकी लगाम पकड़े हुए इस तौरसे सतर्क और खबरदार रहो जैसे जङ्गलमें बारहसिंगे सतर्क और खबरदार रहते हैं। सर्वदा अपने मनपर वैसा ही ध्यान रक्खो जैसे साइकिलका सवार बैलेन्सपर ध्यान रखता है।

सत्य।

१—इस बातकी खोजमें न रहो कि हम ऐसे सिद्धान्तको माने जिसे बहुतसे लोग मानते हों—जिसे बहुतसे लोग पसन्द करते हों। इसका तो पता लगाना असम्भव ही, नहीं किन्तु मूर्खता भी है। यदि तुम अपनी तथा दूसरोंकी भलाई चाहते हो—यदि तुम सबको प्रसन्न करना चाहते हो—तो सत्यकी खोज करो, सत्यका पता लगाओ और सत्यको ग्रहण करो। सत्यके ग्रहणसे, चाहे वर्त्तमान समयमें लोग तुमसे अप्रसन्न हों, पर याद रखना कि भविष्य की सारी जनता—भविष्यकी सारी सन्तान तुमारी है। भगवान् बुद्धके सिद्धान्तोंमें जो सत्यांश है, ईसा की शिक्षामें जितनी सत्यता है और मुहम्मदके उपदेशोंके

भीतर भी जितनी सच्चाई है, उसका लोप कदापि नहीं हो सकता। हां, इन सिद्धान्तोंमेंसे भ्रमपूर्ण असत्य भागका नाश अवश्य होगा। विश्वास रक्खो कि बदली सूर्य्य को सर्वदाके लिए नहीं ढांप सकती; असत्य, सत्यको बहुत दिनोंतक नहीं दबा सकता। "अतः सत्य क्या है" इसका पता लगाओ—इसकी खोज करो। असत्यमें प्रतिष्ठा पाकर जीनेसे, सत्यके लिये अप्रतिष्ठित होकर मर जाना भी श्रेष्ठ है।

मज़हबी रोग।

मनुष्यका यह स्वभाव है कि वह जिस मज़हब और मतको मानता है उसका यह विश्वास हो जाता है कि, किसी समय सारा संसार इसी मज़हबका अनुयायी हो जायगा। यह भी एक प्रकारकी मूर्खता है। संसारमें न कभी एकमत वा मजहब था न अब है और न आगे कभी होगा। पर मजहबी लोग अपने मजहबके अनुसार अपना जीवन सुधारनेमें अपना समय न लगाकर दूसरे मजहबवालोंसे झगड़ा करनेमें अपना समय बिताते हैं। ऐसे लोग दूसरे मतवालोंसे अनेक प्रकारका वादा विवाद कर उनसे अपना मत मनवाना चाहते हैं। जब उनका मत कोई नहीं मानता तो वे बहुत ही दुःखी और चिन्तित होते हैं। बहुतसे लोग तो अपना मज़हब स्वीकार करानेके लिए अन्य मतवालोंका प्राण तक लेनेके लिए तैयार हो जाते हैं। अपना मत मनानेके लिए छल और कपटसे भी काम लेते हैं। ऐसे मतवादियों और मज़हबी लोगोंको कभी शान्ति नहीं मिल सकती। ऐसे लोगोंके लिए मज़हब और मत भी एक रोग है। जितना समय तुम व्यर्थ के विवाद और बहसमें बिताते हो उसका आधा भी यदि आत्म-चिन्तन और आत्मसुधारमें लगादो तो बड़ा काम हो जाय।

जितने लोग दूसरोंको सुधारनेके लिए व्याख्यान और उपदेश दे रहे हैं वे यदि स्वयम् सुधर जायँ तो संसारका एक भाग उसी समय सुधर जाय। अतः मज़हबी विवादको छोड़कर आत्म चिन्तनमें लग जाओ तभी आत्माको शान्ति मिल सकती है।

प्रेम का रहस्य।

लोग कहते हैं कि जब हम अमुक मनुष्यको देखते हैं तो हमारी शान्ति भङ्ग हो जाती है—हमारे हृदयमें आग लग जाती —हमारा खून उबलने लगता है—छटांक खून जल जाता है। पर वही मनुष्य जब अपने प्रियको देखता है, पानी पानी हो जाता है—गद गद हो जाता है—शीतल हो जाता और खून बढ़ जाता है। प्रेमकी अद्भुत महिमा है प्रेममें शीतल करनेकी शक्ति और विरोधमें जलानेकी शक्ति है। एक विरोधी मनुष्य यदि किसी सभा या गांवमें चला जाय तो सभा या गांवमें आग लगा दे। ठीक इसी तरह एक प्रेमी मनुष्य यदि किसी गांवमें चला जाय—किसी सभामें चला जाय—तो सबको शीतल कर दे; वहां अमृतकी वर्षा होने लगे जिस समय रामके प्रेमी प्रहलादको हिरण्यकशिपुने जलती हुई अग्निमें डाल दिया उस समय प्रहलादके मुखसे जो वाक्य निकले थे उससे प्रेमकी महिमा स्पष्ट प्रगट होती है। प्रहलादने कहा था—

रामनामजपतां कुतोभयम्,
सर्वताप शमनैक भेषजम्।
पश्य तात मम गात्र संगमात्;
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥१॥

प्रायः लोग कहा करते हैं कि क्या यह कथा सत्य है? क्या सचमुच प्रहलाद अग्निमें नहीं जले थे? इसपर हम कुछ नहीं कहना चाहते। पूर्वोक्त श्लोकका अर्थ समझिए बात समझ में आ जावेगी। प्रहलादने कहा "हे तात! जो सर्वदा रामके प्रेममें मग्न है—जिसके रोम २ में प्रेम भरा है—जिसके खूनमें प्रेमका प्रवाह है—उसको क्या भय? रामका प्रेम तीनों तापोंको शमनकरनेवाली महौषधि है। देखो! हमारे शरीरमें प्रेमकी इतनी शीतलता है कि हमारे शरीरके छू जानेसे यह जाज्वल्यमान अग्नि भी पानी पानी हो रहा है। जलाना तो दूर रहे यह प्रेमीके संसर्गसे स्वयम् शीतल हो गया।"

❀ ❀ ❀

इस की परीक्षा हो चुकी है और इच्छा हो तो आप भी ले सकते हैं। यदि दो मनुष्य अपने पूर्ण क्रोधसे लड़ रहे हों उस समय यदि उन दोनोंके मुँहका थूक लिया जाय तो उसमें विष पाया जायगा। बिल्लियों और कुत्तों को खिलाकर देखा गया वे मर गए हैं। इसी तरह यदि दो प्रेमी और प्रिय परस्पर मिल रहे हों तो उनका थूक अमृतमय होगा। प्रायः ऐसे थूक जब जब (एक विशेष युक्तिसे) पागल कुत्तोंको दिए गए तो वे सबके सब अच्छे हो गए। साधुओंका जूठा फल लोग क्यों खाते हैं? साधुओंका जूठा प्रसाद खानेसे बड़े बड़े असाध्य रोग क्यों छूट गए? इसका कारण यही है कि साधु उसी मनुष्यको कहते हैं कि जिस का रोम रोम ईश्वरकी भक्ति और प्रेमसे भरा हो। और इसके कारण उसके मुँहमें अमृतका निवास हो। प्रेमी मनुष्य तो धन्य है ही, पर वह मनुष्य भी संसारमें धन्य है जिसे किसी सच्चे प्रेमीका दर्शन हो जाय। प्रेमियोंके दर्शनसे हृदयमें वही आनन्द होगा जो भगवान्के दर्शनसे होता है। सच्चा प्रेमी साक्षात् भगवान् है और उसका जूठा "अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधि

विनाशनम्" वाला महा प्रसाद है। पर आजकल बहुतसे ऐसे नामधारी साधु भी हैं कि उनका जूठा आपपर विष तुल्य प्रभाव डालेगा; इससे होशियार रहना चाहिए। सच्चे प्रेमीका दर्शन करो, हृदयको शान्ति मिलेगी।

❀ ❀ ❀

प्रेममें इतनी शीतलता होती है—प्रेम खूनके अणुओंको ऐसा बना देता है—कि यदि संयोगसे उसमें विष भी प्रवेश करे तो वह पानी हो जाता है। जैसे कालराके कीड़ खूनमें प्रवेश करते ही उसके अणुओंको पानी कर देते हैं; उसी तरहसे प्रेमोन्मत्त खूनके कीड़े रोगके अणुओंको निगल जाते और विषके प्रभावको फीका कर देते हैं। थोड़ासा विचार करनेसे यह बात समझमें आ जायगी कि हम क्या कह रहे हैं। मीराबाई प्रेमकी एक स्थूल मूर्त्ति थी। उसके रग रगमें—उसके खूनके प्रत्येक परमाणुमें—प्रेमकी सत्ता भरी हुई थी। उसका जीवन प्रेममय हो रहा था। वह कृष्ण प्रेममें उन्मत्त थी। उसका श्वसुर इस प्रेमसे बहुत ही असन्तुष्ट था; वह इसे ज़हर देकर मार डालना चाहता था। वह यह नहीं जानता था कि मीरा पर ज़हरका प्रभाव नहीं पड़ेगा; उसे प्रेमका प्रभाव विदित न था। अन्तमें उसने एक गिलास ऐसा तेज ज़हर घुलवा कर भेजवा दिया कि जिसे पीते ही मनुष्य मर जाय। ज़हर लेकर उसकी लड़की आई थी। उसने ज़हर न बतलानेका निश्चय किया था। पर जब वह इस प्रेममयी मूर्त्तिके सामने आई है, (जिसके सामने शत्रु भी आकर मित्र हो जाता है) वह प्रेमसे गद्गद हो गई। उसके शरीरमें रोमाञ्च हो गया। उसने आंसू बहाते हुए यह कह दिया—"भाभी इसमें ज़हर है"। पर मीराको जीने वा मरने की परवा कहां? उसे उस काले हलाहलमें भी उसी श्याम सुन्दर श्री कृष्णचन्द्र गिरिधर गोपालकी मूर्त्ति झलकने लगी,

जिसके अनन्य प्रेममें वह निमग्न रहा करती थी। सच्चा प्रेमी सारे संसारमें अपने प्रियको देखने लगता है। वह जहरको देखकर बहुत प्रसन्न हुई और उठाकर सब पी गई। पर श्वसुरको यह सुनकर बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि एक घंटे बाद भी उसका प्राणान्त न हुआ। उसने एक गिलास ज़हरका फिर भेजा। इसी तरहसे चार चार गिलास ज़हरके दिए गए पर, उस प्रेममय शरीरमें जाकर सब पानी हो गए;—अपना प्रभाव न दिखा सके। इसे सच जानिए कि जिसका हृदय प्रेमसे लपेटा हुआ और प्रेममें पगा है उसका ज़हर कुछ नहीं कर सकता। देवलोकका प्रसिद्ध अमृत यह प्रेम ही है।

❀ ❀ ❀

जैसे प्रियको न मिलनेसे बुखार चढ़ जाता है, उसी तरह यदि ज्वर चढ़ा हो और कोई सच्चा मित्र मिल जाय तो बुखार उतर जायगा। हमने सुना है कि अमेरिकामें कोई ऐसे डाक्टर हैं कि जो रोगीके साथ प्रेमसे बात चीत करते हैं और उसका ज्वर उतर जाता है। हमने स्वयम् ऐसा किया हैं और हमारे कई एक मित्रोंका बुखार हमारे साथ बात चीत करनेसे उतर गया है। हम सत्य कहते है कि यदि कोई ऐसा मनुष्य हो कि उसका किसीके साथ विरोध न हो तो वह कभी बीमार ही नहीं पड़ सकता। अतः वह मनुष्य धन्य है जिसका किसी के साथ विरोध नहीं, किन्तु सर्वदा अपने प्रियतमके ध्यानमें मस्त रहता हो।

❀ ❀ ❀

प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर प्रेम है। नास्तिक भी कहते हैं कि यह सृष्टि उत्पन्न होनेके प्रथम परमाणु-रूपमें, आकाशमें बिखरी हुई थी, इसके ज़र्रे ज़र्रे अलग थे। इन्हीं बिखरे हुए परमाणुओंने, आपसमें मिलकर सृष्टि या वर्तमान संसारको बना

दिया। पर नास्तिकोंसे यह पूँछना चाहिए कि उन परमाणुओं में मिलने वा अलग होनेका कुछ गुण था वा नहीं ? यदि मिलने का गुण था, तो अलग क्यों रहे; और यदि अलग होनेका गुण था तो मिले क्यों ? यदि दोनों नहीं था तो वे क्यों किसी समयमें मिलते और किसी समयमें अलग होते हैं ? अतः इससे यही मालूम होता है कि उनमें स्वयं मिलनेका वा अलग होनेका गुण नहीं; किन्तु जैसे हम लोग ईंटों को इकट्ठा कर एक घर बना लेते हैं उसी तरह उसे भी किसी चेतन पुरुषने इकट्ठा कर संसारको बनाया। यह सोच कर नास्तिकोंको मानना पड़ता है कि कोई ऐसी चेतन शक्ति अवश्य है जो परमाणुओंको मिलाती है। वही ईश्वर है। अब यह देखना हैकि वह कौनसी वस्तु है जिसमें मिलानेका गुण है ? यदि इस वस्तुका पता लग जाय तो ईश्वरका भी पता लग जाय। क्या आप नहीं जानते कि यदि चार भाई मिले हुए हैं इकट्ठे हैं तो क्यों ? प्रेमसे। मिलानेका गुण प्रेममें है। अतः प्रेमही ईश्वर है। जबतक यह प्रेम रूपी ईश्वर संसारमें व्यापक है—तबतक इस संसारकी स्थिति है जिस रोज यह प्रेमरूपी ईश्वर संसारसे निकल जायगा, उसी रोज़ संसारका प्रत्येक परमाणु अलग होने लगेगा और संसारका नाश हो जायगा। क्योंकि परमाणुओंके मेल वा प्रेमसे ही संसारकी उत्पत्ति हुई है। संसार के परमाणुओं वा संसारकी स्थिति ईश्वरके कारण है। जिस समय ईश्वरकी सत्ता निकल जायगी इसके परमाणुओं का भी पता न लगेगा। किसी जाति, किसी देश वा किसी वस्तुका जब बननेके दिन आते हैं तो उनमें प्रेम होता है; इसी तरह जब बिगड़नेका समय होता है तो उनमें विरोध फैल जाता है-यहीं नियम है। शरीरमें जबतक जीवनी शक्ति होती है शरीर सुगठित और दृढ़ होता है। पर जब इसमेंसे जीवनी शक्ति निकलने लगती

है तो यह बीमार पड़ता और फूल जाता है। मृत्यु निकट आने पर शरीरका प्रत्येक परमाणु एक दूसरेसे पृथक् होनेका यत्न करता है। फूलनेका यही कारण है। मौतके समय शरीर और प्राण, जीवात्मा और शरीर, तथा अग्नि, जल और वायु सभी परस्पर अलग होनेका यत्न करते हैं। विचार कर देखिए विरोध और मृत्यु दोनों एक पदार्थ हैं। विरोधमें शान्त नहीं है।

❀ ❀ ❀

हमने अभी कहा है कि प्रेमही ईश्वर और जीवन है। अतः जिस जाति वा जिस पुरुषमें जितना ही प्रेमका अंश हो आप समझ लीजिए कि उस जाति और उस पुरुषमें उतना ही ईश्वर का अंश है—उसपर उतना ही ईश्वरकी कृपा है—वह उतना ही ईश्वरस्वरूप है। जो जितना ही ईश्वरका भक्त होगा—जिसमें जितना ही ईश्वरका अंश होगा—उसमें उतना ही प्रेम होगा। "राम" धनुष तोड़ने वा रावण और कुम्भकरणके जीतनेसे ईश्वरावतार नहीं सिद्ध हुए थे। राम, उस समय ईश्वरातार सिद्ध हुए जिस समय बड़े बड़े ऋृषियोंके आश्रमको छोड़कर, प्रेम के वशीभूत हो, शवरी (भीलिन) की झोंपड़ीमें ठहरे और बारम्बार प्रशंसा करके शवरीके जूठे बेरोंको खाया। जिस समय राम शवरीके जूठे बेरोंको खा रहे थे उस समय आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई। देवताओंने कहा—"राम तुम धन्य हो! तुम्हारा यह प्रेमभाव सिद्धकर रहा है कि तुम ईश्वरावतार हो—साक्षात ईश्वर हो। रामको, शवरीके जूठे बेरोंमें, अमृत का स्वाद मिला था। सचमुच वह बेरका फल अमृतमय हो गया था। हम पहले ही कह चुके हैं कि प्रेमियोंके थूकमें, उनके मुँहमें या उनके जूठेमें अमृतका वास रहता है।

अहा! कहां एक सारी पृथ्वीका सम्राट् और महाराजाधि-

राज, कहाँ शबरी ! तिसपर भी उसका जूठा खाना !! बस यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर प्रेममय है—प्रेम स्वयम् ईश्वर है ।

राम इस बातको जानते थे कि शबरीने बेरोंको कितने प्रेमसे तोड़ा है—उसके भीतर कैसा अलौकिक प्रेम है, जो वहां के ऋषियोंमें भी नहीं था ।

जनक नगर औ मातु घर,
भोजन किएउँ अपार ।
की शबरी की बिदुर घर,
मन मानेउ दो बार ॥

❀ ❀ ❀

तात्पर्य्य कहनेका यह है कि, यदि तुम शान्ति चाहते हो—यदि तुम यह चाहते हो कि संसार तुम्हारे लिए सुखमय हो जाय—यदि तुम अपने जीवनको अमृतमय और नीरोग बनाना चाहते हो तो किसीके साथ विरोध मत करो। सबसे प्रेमसे मिलो, प्रेमसे बात चीत करो, और सर्वदा प्रेममय रहो । किसी को छोटी जातिका न समझो । वास्तवमें कोई विशेष जाति छोटी वा नीच नहीं है । प्रेम या ईश्वरकी दृष्टिमें सब बराबर हैं । हृदय में प्रेमको स्थान दो, जाति पांतिका झगड़ा ऊंच नीचका अभिमान आपसे आप निकल जायगा । यह निश्चय जानो, जब तक तुम्हारे हृदयमें प्रेमकी धारा न बहेगी, तुम प्रेमपूर्ण न हो जाओगे तबतक हृदयमें शान्ति और ब्रह्मज्ञानका उदय न होगा । ब्रह्मज्ञान को केवल पढ़ लेनेसे कुछ नहीं होता; उसका यथावत् या तत्वसे समझना दूसरी बात है । जब तुम ब्रह्मज्ञानको यथावत् समझ जाओगे, उस समय मालूम होगा कि हमारी पहिली समझसे और अब कितना भेद है । उस समय तुम्हारे ध्यानमें आ जावेगा

कि पढ़कर भी, हम ब्रह्मज्ञानसे कोसों दूर थे। जब तक तुम्हारे हृदयमें ऊँचे और नीचेका भाव है—जब तक तुम्हारे हृदयमें शान्तिके पहाड़से प्रेमकी पतितपावनी गंगा न बही—कैसे माना जा सकता है कि तुम्हारे अन्तःकरणमें ब्रह्मज्ञानका उदय हो गया? कभी नहीं। सच्ची बात तो यह है कि, "ब्रह्म, ब्रह्मज्ञान और प्रेम" ये तीनों एक हैं।

हमारी आत्मा ही ब्रह्म है।

१—यद्यपि ईश्वर अदृश्य है—यद्यपि उसे किसीने अपनी आंखोंसे आजतक नहीं देखा—पर उस पर इतने लोगोंका विश्वास है, इतने लोगोंकी श्रद्धा है कि उतनी श्रद्धा और विश्वास, देखे हुए प्रत्यक्ष पदार्थोंमें नहीं पाया जाता। प्रत्यक्ष पदार्थोंमें मतभेद है पर उस अप्रत्यक्ष, अदृश्य और अचिन्त्य ईश्वरको सभी मजहबवाले मानते हैं। नास्तिक भी यद्यपि ईश्वरके न होने पर विवाद करते हैं पर कभी कभी उनका शुष्क हृदय भी डांवाडोल हो जाता है, जिस समय वे चारपाई पर सोते हैं—जिस समय उनका चित्त एकाग्र होकर रात्रिके समय आकाश मंडलकी ओर जाता है—उस समय बड़े बड़े नास्तिक भी हृदयमें कह देते हैं कि—"ईश्वर हो तो कोई आश्चर्य्य नहीं।" ईश्वरके विषयमें सबकी ऐसी स्वाभाविक गति क्यों है? इतनी श्रद्धा और विश्वास क्यों है? ऐसा अकारण प्रेम, ऐसी अकारण श्रद्धा सिवाय अपने आत्माके दूसरे पर नहीं देखी जाती। अतः पूर्वोक्त बातोंसे यही प्रकट होता है कि वह परमात्मा हमारी आत्मासे कदापि पृथक् नहीं; वास्तवमें वह ईश्वर हमारा आत्मा ही है। यद्यपि इसका ज्ञान होना बहुत कठिन है, पर विचार करो और बारम्बार इसका मनन करो।

यदि तुम अपनी आत्माका सच्चा स्वरूप पहिचान लोगे तो तुम्हारा जीवन आनन्द मय हो जायगा।

❀ ❀ ❀

२—संसारमें केवल पृथ्वी ही गोल नहीं है, किन्तु संसारका प्रत्येक व्यवहार—प्रत्येक कार्य्य गोल है। पृथ्वीके गोल होनेमें यह प्रमाण दिया जाता है कि यदि हम किसी एक स्थानसे रवाना होकर बराबर एक ही दिशाकी ओर चले जायँ तो फिर वहीं आ जायँगे जहांसे रवाना हुए थे। यदि पृथ्वी गोल न होती तो ऐसा कदापि न होता। ठीक यही दशा संसारके और कार्य्यों—और व्यवहारों—की भी प्रत्यक्ष देखी जाती है। जो अपनी ओरसे संसारके चारों ओर प्रेम छोड़ता है—प्रेमकी वर्षा करता है—उसकी ओर भी चारों तरफसे प्रेमकी वृष्टि होती है। प्रेम, द्वेष, या सद्भाव जहांसे जितना रवाना होता है वहां पर उतना ही फिर लौट आता है; संसारका यही नियम है।

नीचे समुद्रसे भाफ उठती है और ऊपर आकाशको प्राप्त हो बादलका रूप धारण करती है। सर्दी पाकर फिर वही वस्तु बूंदोंका रूप धारण कर हिमालय पर्वत पर गिरती और अधिक सर्दी पाकर पत्थरके समान जम जाती और बर्फ कहलाती है। देखिए, फिर वही बर्फरूपधारी समुद्रका जल गल गल कर हिमालयसे नीचे उतरता और गंगा नाम धारण कर भारतवासियोंको पवित्र करता हुआ पूर्वस्थान समुद्रको चला जाता है। खयाल कीजिए इसका भी एक गोल चक्र है। संसारका प्रत्येक पदार्थ जहां से उठता है फिर वहीं आकर विश्राम लेता है।

नीचे पृथ्वी पर पड़ा हुआ बीज अङ्कुरका रूप धारण कर ऊपरको उठता और एक बड़ा वृक्ष हो जाता है। शाखें निकलती हैं, पत्ते लगते हैं, फूलता और फलता है; पर अन्तमें जो होता

है वह किसीसे छिपा नहीं है। फिर उस फलमें वही नीचेका बीज अपना पहला रूप धारण कर—बीज होकर—उसी पृथ्वी पर गिर पड़ता है जहांसे रवाना हुआ था। इसीसे इस संसार का नाम संसारचक्र है। इसका प्रत्येक व्यवहार चक्रवत् गोल है।

इसी तरहसे संसारके सारे पदार्थ अपने अपने चक्रमें पड़े हुए अपने लक्ष्यस्थानकी ओर बहे चले जाते हैं। यह स्वाभाविकी गति—यह प्राकृतिक प्रवाह—संसारके प्रत्येक व्यवहार प्रत्येक कार्य्य, प्रत्येक वस्तु, और प्रत्येक तत्वमें पाया जाता है। जहां देखिए वहीं इस प्रवाहमें पड़ी हुई संसारकी प्रत्येक वस्तु भागती हुई—दौड़ती हुई—दृष्टि गोचर होगी। वृक्ष बढ़ता बीजकी ओर जा रहा है—नदियां बहती हुई समुद्रकी ओर जा रही हैं—सारा संसार जहांसे आया है उन्नति करता हुआ वहीं बढ़ा जाता है।

अब विचारणीय विषय यह है कि यह जीवात्मा किधरसे आया और उन्नति करता हुआ किधरको जा रहा है—इसका स्वाभाविक प्रवाह किधरको है? जैसा कि हम इसके पहले कह चुके हैं, विचार करनेसे इसका स्वाभाविक प्रवाह ईश्वरकी ओर मालूम होता है। यह जीवात्मा ईश्वर हीसे आया—ईश्वर हीसे उत्पन्न हुआ और क्रमशः वृक्ष, पशु, तथा पक्ष्यादि योनियों से उन्नति करता हुआ देव योनिको तय करके उसी ईश्वरको प्राप्त होगा जहांसे यह गिरा है। आध्यत्मिक विचार आते ही तुम इसे अच्छी तरह समझ जाओगे कि जीवात्माकी धारा बराबर ईश्वरकी ओर उन्नति करती हुई क्रम क्रमसे बहती चली जा रही है, कहीं रुक नहीं सकती।

अब देखना यह है कि यह धारा है क्या चीज? यह धारा वही है, जिससे यह उत्पन्न हुई है, जहांसे यह आ रही है;

अब यह दूसरी वस्तु नहीं। समुद्रसे उठी हुई भाफ, बादल, बूंदी, बर्फ और नदी सब जल ही है और अन्तमें जल रूप समुद्र मेंही मिलेगा। ठीक इसी तरह यदि जीवात्मा इश्वर हीसे आया है और अन्तको ईश्वरी हीमें मिलेगा तो अबभी ईश्वरही है, दूसरा नहीं। अतः, हम कहते हैं यदि तुम्हें सच्चे आनन्दको प्राप्त करना है, तो अपने सच्चे स्वरूप का स्मरण करो—जिसे अपने स्वरूप हीका ज्ञान नहीं उसे आनन्द और शान्ति कभी मिल नहीं सकती। आत्मज्ञान ही आनन्दका समुद्र और शान्ति का सच्चा स्थान है।

एक विजातीय वस्तु दूसरी विजातीय वस्तुको नहीं खींच सकती। आकर्षण शक्ति केवल जातीय पदार्थोंमें काम करती है, विजातीयमें नहीं। गँजेड़ीके पास गँजेड़ी, शराबीके पास शराबी, जुवाड़ीके पास जुवाड़ी आपसे आप, आकर्षणशक्तिके प्रभावसे, इकट्ठे हो जाते हैं। पृथ्वी स्थूल है, इसलिए वृक्षसे टूटा हुआ फल पृथ्वीकी ओर खिच आता है; इसी तरह आकाश सूक्ष्म है, अतः अग्निसे छूटा हुआ सूक्ष्म धूम (भाफ वा धूँवा) सूक्ष्म आकाशकी ओर आपसे आप खिच जाता है। नदियां समुद्रकी ओर क्यों खिची जाती हैं क्योंकि उनका जातीय समुद्र उनको खींच रहा है। जहां देखिए वहीं एक जातीय पदार्थ दूसरे पदार्थको खींच रहे हैं। इस संसारमें यदि विचार कर देखिए तो जलके परमाणु जलको, पृथ्वीके परमाणु पृथ्वीको, अग्निके परमाणु अग्निको और वायुके परमाणु वायुको बराबर अपनी ओर खींच रहे हैं। यही जातीय खिचाव ही—जातीय प्रेम, जातीयता, और स्वदेशप्रेमका कारण है। अतः यदि हम ईश्वरकी ओर खिचे जाते हैं—यदि वह हमें अपनी ओर खींच रहा है—तो अवश्य, हम वही वस्तु हैं—वही पदार्थ हैं—जो वह है। वह कोई दूसरी वस्तु वा कोई दूसरा पदार्थ नहीं। मैं वह हूं और

वह मैं। इस एकताका हृदयमें मनन करो बारम्बार चिन्तन करो। एकता और अद्वैतका वास्तविक ज्ञान होते ही हृदयमें शान्ति और आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ेगा।

❀ ❀ ❀

३— लोग कहते हैं कि उस आनन्द स्वरूपसच्चिदानन्द ईश्वरके ज्ञानसे मनुष्य भी आनन्दस्वरूप हो जाता है। यही कारण है कि बड़े बड़े योगी उसकी खोजमें पड़े हुए हैं और हजारों महर्षि उसके ज्ञानसे आनन्दित हो चुके हैं। पर विचार करनेकी बात यह है कि यदि वह आनन्द स्वरूप हमसे अलग है—हमसे पृथक् कोई दूसरा पदार्थ है—तो उसके ज्ञानसे, उसके आनन्दस्वरूप होनेके कारण, एक ऐसा पुरुष जो उससे भिन्न है—उससे पृथक् है—आनन्दस्वरूप कैसे हो सकता है? आज एक महीनेसे हमें इस बातका ज्ञान है—हम इसे जानते हैं—कि रामदासके पास करोड़ों रुपया है—पर इससे हमें क्या? उनके रूपयोंका सुख हमें नहीं मिल सकता। किसी रोगीको यह मालूम हुआ कि हमारा पड़ोसी निरोग है—इसके ज्ञान मात्रसे वह रोगी सुखी नहीं हो सकता। हां, ऐसे ज्ञानसे एक अपूर्व आनन्द उस समय होता है जब हमें यह मालूम हो जाय कि वह करोड़पती रामदास हमीं हैं; हम भूले हुए थे हमीं रामदास हैं, और वह रुपया हमारे ही पास गड़ा हैं। ठीक इसी तरह जब कोई सच्चा योगी उस आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्दकी खोजमें चलता है—जिस समय वह उसका पता लगा लेता है—उसका ज्ञान प्राप्त कर लेता है—वह देखता है कि वह आनन्द घन—वह आनन्दस्वरूप—वह सच्चिदानन्द हमीं हैं। उस समय जो अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है उसका वर्णन बाणी द्वारा नहीं हो सकता; किन्तु वही जानता है जो उस आनन्दमें मग्न हो जाता है। अतः यदि तुम सच्चा आनन्द चाहते हो—तो जैसे हो, कुछ

भी मान कर उस परमात्माकी खोजमें लग जाओ, वहीं आनन्दका भण्डार और सुखका ख़जाना है।

❀ ❀ ❀

४—दूसरेका सुख, ऐश्वर्य्य सामर्थ्य और बल देखकर दूसरेके हृदयमें ईर्षा उत्पन्न होती है, सुख नहीं। सच्चा सुख, उसी समय मिल सकता है जिस समय तुमसे बढ़कर या तुम्हारा बराबरी करनेवाला संसारमें कोई न हो। जिस समय हम अपनेसे किसीको उच्च स्थान पर देखेंगे हमारे हृदयको को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। मोक्ष होने पर भी यदि यह जीवात्मा परमात्मामें नहीं मिलता,—एक नहीं हो जाता—तो उसके ऐश्वर्य्य और सामर्थको देखकर इसे आनन्दकी प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। उलटी ईर्षाग्निमें जलते रहेंगे। यदि वह हमसे भिन्न वस्तु है तो उसके ज्ञानसे, उसके निकट जानेसे वा भक्तिसे, हम कदापि सुखी नहीं हो सकते, अतः सच्चा मोक्ष है ईश्वरसे अभिन्न हो जाना। यदि मोक्षकालमें हम परमात्मासे मिलते हैं—हम उसमें लीन होते है—तो अब भी हम वही हैं। क्योंकि एक शुद्ध पदार्थमें यदि कोई दूसरा पदार्थ मिला दिया जाय, तो वह शुद्ध पदार्थ भी विकृत हो जायगा। पर ईश्वर नित्य शुद्ध और निर्विकार है; इसलिए यह जावात्मा उससे भिन्न कोई अन्य पदार्थ नहीं—यह वही है; केवल कल्पना मात्र का भेद है। तुम इस समय भी मुक्त हो। बन्धन, केवल कल्पना मात्रका है; वास्तविक नहीं। इस कल्पना वा भेदाभेद को जो समझता है वही विद्वान् और वही सुखी है। शान्ति उसी को मिल सकती हैं जिसमें अभेदभाव है; जो परमात्माको अपने से अलग नहीं समझता।

❀ ❀ ❀

५—एक स्त्री जब अपने पतिपर दूसरी स्त्रीका प्रेम देखती है तब उसे बड़ा दुःख होता है। प्रेमी यही चाहता है कि हमारे प्रिय का दूसरेके साथ प्रेम न हो और उसके प्रेमी भी केवल हमीं हों। पर जिस ईश्वरका करोड़ोंके साथ प्रेम है—जिसके करोड़ों प्रेमी संसारमें वर्त्तमान हैं—यह जानते हुए भी लोगोंका अनन्य प्रेम उसके साथ क्यों हो जाता है? जिसके असंख्य प्रेमी हैं उसके साथ हमारा प्रेम निरर्थक और मूर्खता है? असंख्य प्रेमियोंके सामने हम किसमें हैं? इन सब बातोंको जानते हुए भी उसके असंख्य, सच्चे प्रेमी, और अनन्य सेवक हैं। अतः इसका कोई गुप्त कारण अवश्य है। क्या आप इसका कारण जानते हैं? इसका कारण यह है कि वह सबकी आत्मा और अद्भुत होनेसे सर्वप्रिय है। हजारों गोपियोंका, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके साथ प्रेम क्यों था? हजारों गोपियाँ आनन्दसे कृष्णके साथ नाचती थीं पर परस्पर ईर्षा और द्वेषका नाम भी न था, क्या कारण? कारण प्रकट है। ईर्षा तब होती है—द्वेष तब होता है—जब एकके साथ कृष्ण होते और दूसरेके साथ नहीं; एकके साथ नाचते और दूसरे साथ नहीं। पर भगवान् कृष्णचन्द्र सबकी आत्मा थे। सबके कृष्ण सबके साथ थे; जितनी गोपियां थीं उतने कृष्ण थे। सबने प्रत्यक्ष देखा कि हमारे कृष्ण हमसे लिपटे हुए हैं। वेदान्तका रहस्य जानना है तो कृष्णकी जीवनी पर—कृष्णके वाक्यों पर—ध्यान दो। यदि तुम्हें कृष्णकी कथा समझमें आ जायगी तो तुम्हें एक अपूर्व आनन्द मिलेगा।

गुप्त सिद्धियाँ कैसे मिल सकती हैं।

१—प्रायः लोग कहते हैं कि प्राचीन लोगोंमें इस बातकी बड़ी कमी थी कि वे अपने जानी हुई अच्छी विद्याओंको गुप्त रखते और किसीको उसका उपदेश नहीं देते थे। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन लोग योग और वेदान्तादि विषयोंको गुप्त रखते थे; पर वह इस लिए नहीं कि उसका ज्ञान किसीको न हो किन्तु इस लिए कि उसे अधिक लोग जाननेका यत्न करें। क्योंकि जो वस्तु गुप्त रक्खी जाती है उसे जाननेके लिए बहुतसे लोग प्रयत्न करते हैं; प्रत्येक मनुष्यमें यह गुण स्वाभाविक रीतिसे वर्त्तमान हैं। अपने नौकरको दस सन्दूक सौंप जाइए। एक सन्दूकके लिये विशेष रीतिसे कह दीजिए कि चाहे औरोंको खोलना पर इस काली सन्दूकको कभी मत खोलना। अब इसका प्रभाव यह पड़ेगा कि, यदि वह सन्दूक खोलेगा—यदि उसे खोलने की इच्छा होगी—तो उसी काली सन्दूकको जिसे आपने मना किया है। ईसाई लोग भी कहते हैं कि आदमने वही फल खाया जिसे ईश्वने खानेके लिए मना किया था। मतलब कहनेका यह है कि गुप्त विषयको जाननेके लिए सर्व साधारण अधिक प्रयत्न करते है; और जो जिस विषयके जाननेका दृढ़ प्रयत्न करता है—जिसे उसकी दृढ़ जिज्ञासा है—वही उस विषयके जाननेके अधिकारी हैं। अधिकारीको सारी गुप्त विद्याएँ बतलाई जा सकती हैं यह सब आचार्य्योंका मत है। अनधिकारी को—उस मनुष्य को जो उसे जाननेके लिए प्रयत्न और श्रद्धा नहीं दिखलाता—उसे उपदेश देना वा किसी वस्तुको बतलाना व्यर्थ होता है। क्योंकि ऐसा मनुष्य या तो ऐसे उपदेशोंको ग्रहण ही नहीं करता या उससे वह ऐसा काम लेता है जिसके लिए वह वस्तु नहीं बनाई गई। जैसे, कोई अच्छी पुस्तक किसी बनियेके हाथमें जाय वह उसे

फाड़ कर अपना सौदा बांधनेके काममें लावे। ऐसे लोग वेदान्तादि ज्ञानका लाभ कर इधर उधर विवाद करते फिरते हैं। कुछ तो उसके पक्षमें विवाद करते हैं और कुछ विरुद्ध। पर ब्रह्मज्ञानसे केवल विवाद हीका काम लेते हैं और कुछ नहीं। ब्रह्मज्ञानसे केवल विवादके लिए नही है पर अनधिकारी उसे प्राप्त कर दूसरा क्या कर सकता है ? अतः प्राचीन लोग जो ब्रह्मज्ञान और योगको गुप्त रखते थे वह अनुचित नहीं था।

❀ ❀ ❀

२—अब हम अपना विचार उन "गुप्त सिद्धियों" पर प्रकट करना चाहते हैं जो योग और वेदान्तसे सम्बन्ध रखती हैं और जो प्राचीन कालमें बहुत ही गुप्त रक्खी जाती थीं। पर अब वह समय आ गया है कि वे गुप्त विद्याएँ अब उस तौर पर गुप्त नहीं रक्खी जा सकती; हां, गुप्त न रहने पर भी इससे लाभ वही उठा सकेंगे जो इसके जानने के अधिकारी हैं; दूसरे नहीं।

❀ ❀ ❀

३—सांसारिक मनुष्योंमें अधिकतर ऐसे हैं कि यदि उन्हें यह मालूम हो जाय कि आजसे एक महीनेके बाद अमुक तिथि को हमारी मृत्यु निश्चय हो जायगी, तो वे उसी रोजसे मृतकके समान हो जायँगे—वे जीतेही मुर्दोंके समान निश्चेष्ट और निष्क्रिय हो जायँगे—मृत्युका भविष्य जान लेनेसे जीवन व्यर्थ हो जायगा। यही कारण है कि जब आत्मा संसारमें चला स्वयम् उसने ऐसा प्रबन्ध कर लिया है—कालज्ञानके आगे या अपने भविष्यत्के सामने ऐसा पर्दा डाल लिया है—कि जिसमें अपने भविष्यत और मृत्युका ज्ञान उसे न हो। आत्माको मालूम था कि सांसारिक होने पर यदि हमें अपनी मृत्यु और भविष्यत्का ज्ञान रहेगा तो हमारा जीवन व्यर्थ हो जायगा।

४—पर योगियोंको अपनी मृत्यु और कालका ज्ञान हो जाता है। यह एक सिद्धि है जिसे कालज्ञान की सिद्धि कहते हैं। यह सिद्धि उस मनुष्यको प्राप्त होती हैं जिसे जीनेकी इच्छा बिलकुल नहीं रह जाती—जो जीवन और मरणको तुल्य समझता है—जो "मृत्यु" को पुराने कपड़ें को छोड़ नवीन कपड़ा पहनना वा प्राचीन जीवनको छोड़ एक नवीन जीवनमें जाना, समझता है। जब योगीका पूर्वोक्त ज्ञान दृढ़ हो जाता है जब उसके हृदयमें पूरा वैराग्य उत्पन्न हो जाता है—तब उसके अन्तःकरणके सामनेसे एक ऐसा पर्दा हट जाता है कि उसे अपने तथा दूसरों की भी मत्युका ज्ञान स्पष्ट होने लगता है। यही एक साधन है जिससे मनुष्यको मृत्युका ज्ञान प्रत्यक्ष हो सकता है।

५—"अमुक कार्य्यमें लाभ होगा या हानि, इस समय जो मोकद्दमा हमारे ऊपर चल रहा है उसमें जीत होगी या हार, अथवा वह चीज़ जिसको हम बहुत चाहते हैं मिलेगी वा नहीं"—इन सब बातोंका उत्तर एक साधारण मनुष्य भी "भविष्यद्ज्ञान की सिद्धि" प्राप्त कर स्पष्ट दे सकता है। क्योंकि इस सिद्धिका प्राप्त कर लेना कोई कठिन कार्य्य नहीं। हां, उसकी युक्ति न जाननेसे सभी बातें कठिन मालूम होती हैं। पर हम अपना जन्म इसी लिए समझते हैं कि गुप्तसे गुप्त बातोंको भी प्रकट करें और लोगोंको बतला दें। इस संसारमें जितने मनुष्य हैं सभी लाभ, विजय और यश चाहते हैं। उस लाभकी इच्छाने ही भविष्यद्ज्ञानके सामने पर्दा डाल दिया है जिससे भविष्यद् का सच्चा ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं होता। "हमारी जीत होगी या हार"—यह प्रश्न उदय होनेपर सबका आत्मा सच्चा उत्तर दे देता है, पर स्वार्थ, जीत वा लाभकी कामना ऐसी प्रबल होती है जो हमारे आत्माका सच्चा और निष्पक्ष उत्तर हृदयको सुनने नहीं देती। हृदयके भीतर स्वार्थ इतने जोरका शोर मचात

रहता है कि उसमें सत्यज्ञानकी धीमी आवाज़ सुननेमें नहीं आती। यदि हम लाभ और हानिमें समबुद्धि रक्खें—यदि हम सुख और दुःखको बराबर समझें—यदि हमारे हृदयसे स्वार्थ की कामना निकल जाय—यदि हम सबको आत्मवत् देखें—तो वह पर्दा जो सत्यज्ञान वा भविष्यद्ज्ञानके सामने पड़ रहा है ऐसा क्षीण हो जायगा कि होनहारकी सब बातें हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष होने लगेंगी—भविष्यकी सारी बातें हृदयकी आंखोंके सामने आजायँगी। जब मनुष्य लाभ हानि में सम होता है—जब उसके हृदयसे स्वार्थ निकल जाता है—उस समय वह संसारके सारे मनुष्योंको आत्मवत् देखता है; भेदभाव नहीं रहता। ऐसे योगियोंको केवल अपने ही भविष्यज्ञान न नहीं होता किन्तु वह प्रश्न करनेपर सबका भविष्यत बतला सकता है। ऐसे ही योगियोंको लोग भविष्यद्वक्ता" (Prophet) कहते हैं।

६—जो मनुष्य, सर्वदा सत्य बोलता है—जिसने सत्य बोलनेका इतना अभ्यास कर लिया है कि भूल कर भी उसके मुखसे असत्य नहीं निकलता—जिसकी जिह्वा स्वभावतः सर्वदा सत्य ही बोलती है—उसके मुखसे जो बचन निकलेगा—वह जिसे वर वा शाप देगा—वह सर्वदा सत्य होगा। इसी सिद्धि को "वाक्‌सिद्धि" कहते हैं।

७— सन्तोष धारण करने, चिन्ता से रहित रहने, और वीर्य्यकी रक्षा करनेसे योगी सुन्दर और बलवान् होता है। इसी तरह आलस्यरहित होने और परिश्रम करनेसे शरीर बलवान और सुडौल होता है।

८—ध्यानयोग द्वारा समाधि तक पहुँचने से अपने स्वरूप का वास्तविक ज्ञान होता हैं और वह यह समझ जाता कि ब्रह्म कौन है और कहां है। विना इसके केवल पुस्तकों द्वारा वास्तविक और दृढ़ ज्ञान नहीं होता। विना समाधिके पुस्तक लिखित "ब्रह्मज्ञान" प्रायः तत्व से नहीं समझा जाता उसकी बुद्धि केवल ऊपर ऊपर फिसला करती है।

❀ ❀ ❀

९—अहिंसाके पालनसे—किसी को दुःख न देनेसे—सबके साथ साधारण प्रेम रखने से—योगी सबका मित्र बन जाता है। इस सिद्धि को "वैर त्याग सिद्धि" कहते हैं। ऐसे योगियों के पास आकर परस्पर शत्रु स्वभाव वाले पशु (जैसे, चूहा बिल्ली एवम् सिंह और गौ इत्यादि) भी परस्पर मित्र बन जाते हैं

❀ ❀ ❀

आदर्श जीवन।

१—पुस्तक पढ़ना तो अवश्य अच्छा है पर "पुस्तक पढ़ने की "धुन" अच्छी नहीं। पुस्तक लिखनेवाला यदि किसी पुस्तक को लिखता है तो इसी उद्देश्यसे कि लोग इससे अपना जीवन सुधार सकें—अपने कुत्सित स्वभावको अभ्यास करके बदल सकें। अतः यदि पुस्तक पढ़नेमें एक घण्टा लगा तो उसके अनुसार अपना स्वभाव बनानेमें महीना दो महीना वर्ष दो वर्ष लग सकता है; सो भी उसके साधनमें जब नित्य कठिन परिश्रम किया जाय तब, अन्यथा जन्म भरमें भी बुरे स्वभाव नहीं बदल सकते। पर संसारिक लोगोंकी विचित्र गति है। या तो वे पुस्तक पढ़ते ही नहीं या पढ़ने लगे तो पुस्तकोंके पढ़ने ही में इतना समय लगा देते हैं कि उन्हें उसपर विचार करने वा उसके अनुसार साधन करके अपना जीवन

सुधारनेका समयही नहीं मिलता। यही दशा अधिकतर पुस्तक लिखने वालों और व्याख्यानदाताओंकी भी है। ऐसे लोग एकतो होते ही बहुत कम हैं, कदाचित् हुए भी, तो उनसे इतनी पुस्तकें लिखवाई और इतने विषयों पर व्याख्यान दिलवाया जाता है (या वे स्वयम् इतना लिखते वा दूसरों को शिक्षा देते हैं) कि उन्हें स्वयं उन शिक्षाओंके अनुसार अपना स्वभाव सुधारने या बनानेका समय ही नहीं मिलता। ऐसा लिखना, पढ़ना, वा उपदेश एक प्रकारका रोग है। अतः तुम स्वयं सोचो, यदि इनमें से कोई रोग तुम्हारे अन्तःकरणके भीतर आ गया है तो उसे निकालनेका यत्न करो; विना इस रोगसे मुक्त हुए तुम्हें शान्ति वा आनन्दका मिलना तो दूर रहे उसकी झलक भी दिखलाई न देगी। अतः किसी अच्छी पुस्तकको चुन लो और प्रातः काल उठकर थोड़ासा नित्य पाठ करो, साथ ही मनमें यह भी प्रतिज्ञा करो कि आज जहांतक हो सकेगा इसीके अनुसार चलेंगे।

❀ ❀ ❀

जिन कर्मोंके करनेसे, मनमें, पछतावा उत्पन्न हो—जो पीछेसे शान्तिका भंग करे—जिसमें सुख हो नाममात्रका पर परिणाममें दुःख ही हो ऐसे कर्म तभी होते है जिस समय मन अपने वशमें नहीं रहता। जिसके जीवन में ऐसे कर्म जितने ही अधिक हों, समझ लो कि उस मनुष्यका " मन " उतना ही चञ्चल है। क्योंकि ऐसे कर्मोंमें गिरना आत्मा कभी नहीं चाहता; किन्तु यह निरंकुश मन ही उसमें गिरा देता है। अतः किसी विशेष समय पर एकाध घण्टे के लिये चित्तके रोकने को ही केवल योग नहीं कहते, किन्तु हर वक्त मन पर ऐसी दृष्टि रक्खे कि वह आत्मा से अपनी वाली न करा सके—यह सर्वोत्तम योग है। इस साधनसे मनुष्य मनका दास नहीं बनता किन्तु मन ही उसका गुलाम बन जाता है। बस, यह बात निश्चित है कि जो

हृदयमें शान्ति चाहता है वह ऐसे साधन करे कि मनका लगाम उसके हाथमें आ जाय। वह मनुष्य धन्य है जो मनका स्वामी है और मन उसकी आज्ञाका पालन करता है।

❀ ❀ ❀

सचमुच, यदि तुम शान्ति और सुख चाहते हो तो संसार को लीला, और अपने को एक उसका दर्शक समझो। इस दृष्टिसे दुख भी सुखरूप हो जाता है। युद्धका चित्र, युद्धका समाचार और युद्धका दृश्य, तमाशा देखनेवालोंको बहुत अच्छा मालूम होता है; पर उसका कष्ट लड़ने वालेही जानते हैं। रास्ता भूल जानेसे एक आश्रयहीना अबला एक घोर बनमें आ पड़ी। दिन भर चलनेपर भी मार्ग न मिला। अन्तमें थककर उसी जङ्गलमें एक नदीके किनारे एक पत्थरकी शिलापर बैठ गई। सूर्य्य अस्त हो रहा है—स्त्री घोर चिन्तामें निमग्न है। इसी भावका एक चित्र हैं। इसे जो देखता हैं बहुत ही प्रसन्न होता है; कहता है कि—यह चित्र बहुत अच्छा है। देखनेवालोंके लिए बहुत अच्छा है—उनका मनबहलाव है—पर उस दीना स्त्री की क्या दशा होगी! उसे कैसा दुःख होता होगा! क्या आप अनुमान नहीं कर सकते? पर इससे क्या? दर्शकोंके लिए यह एक तमाशा है। कहनेका मतलब यह है कि तमाशा की दृष्टिसे दुःख भी सुखदायी हो जाता है। अतः वेदान्त की यह आज्ञा है कि तुम इस सारे संसारको लीलामय समझो। तुम दर्शक बनो और संसार तुम्हारे लिये तमाशा बन जाय; बस, आनन्द ही आनन्द है। प्रसन्न चित्तसे प्रवाहपतित जो दृश्य सामने आवे उसे आसक्तिरहित होकर—तमाशा समझ कर—देखते जाओ और लाभ हानिमें एक रस रहो

❀ ❀ ❀

खेलकी महिमा।

जो कुछ तुम्हें करना है खेल समझ कर करो। कोई काम खेल समझ कर करनेसे न श्रम ही मालूम होता न उत्साह ही भंग होता है। कामको काम समझ कर करनेसे—विवश होकर करनेसे—परतन्त्रतामें करनेसे—मनुष्य अति शीघ्र थक जाता है। पर खेलके कार्य्यमें-स्वतन्त्रतामें—मनुष्य कठिनसे कठिन परिश्रम करके भी नहीं थकता। मास्टरके खड़ा कराने पर जो लड़के एक घंटेमें थक जाते हैं, वही खेल और तमाशोंमें आठ आठ घंटे खड़े देखे गए पर न थके। जितने उत्साहके साथ लोग खेल में कठिनसे कठिन परिश्रम कर डालते हैं उतने उत्साहके साथ उतने परिश्रमका काम कभी नहीं हो सकता। रामने त्रेतामें जो कठिन कार्य्य किया है वह भी खेल ही समझ कर। इसीसे इन लोगोका कार्य्य भी, "कार्य्य" नहीं कहलाता किन्तु 'लीला' कहलाती है। 'रामलीला' और "कृष्ण लीला" अब तक प्रसिद्ध है। ईश्वरने भी इस संसारको लीला समझ कर बनाया है। वेदान्त—दर्शनमें व्यास जी भी कहते है—"लोकवत्तु लीला कैवल्यम्। अतः यदि तुम्हें सच्चिदानंद स्वरूप—ब्रह्म स्वरूप होना है, तों तुम भी संसारको लीलामात्र समझो। ऐसा समझनेसे इस सिद्धान्तको भली प्रकार समझकर इसपर आरूढ़ होनेसे तुम पुराय वा पापसे लिप्त न होगे। जिस समय तुम वास्तवमें इस संसारको खेल समझोगे तुम्हारे हृदयसे मानापमान, ईर्षा द्वेष और मदमात्सर्य्य सर्वथा नष्ट हो जायगा। तुम्हारा हृदय आनंदसे पूर्ण होगा, मुखपर प्रसन्नता रहेगी और अन्तःकरण एक छोटे बच्चेके समान ऐसा स्वच्छ हो जायगा जिसपर सांसारिक हवा अपना प्रभाव न डाल सकेगी।

हमने यहांपर जिस खेलका महात्म्य कहा है वह खेल हीका माहात्म्य है, 'जूवे' का नहीं। जिस खेलमें कुछ बाजी लगाई जाय—जिस खेलकी हार—जीतके साथ लाभ और हानि मिली हो—वह खेल, 'खेल' नहीं है, किन्तु जूवा है। स्मरण रक्खो जूवेका खेल सर्वदा दुःखदायी होता है—वह विषके समान त्यागने योग्य है। खेल वही जिसकी हार जीत भी खेल ही हो न कि उसका सम्बन्ध किसी सांसारिक धन दौलत या मानापमानसे रक्खा जाय।

❀ ❀ ❀

आनन्द का पता।

जहां बहुतसे लोग जाने लगते हैं वहां बेमतलब भी जाने की इच्छा होती है। मन यह जानता है कि वहां जाने से कुछ विशेष आनंद मिलेगा। सबको जाते हुए देखकर मन कहता है कि ये सब लोग मूर्ख नहीं हैं अवश्य वहां पर आनंद है। तुम भी चलो—चलो—अवश्य चलो। वहां पर शान्ति मिलेगी, सुख मिलेगा, तापत्रय से जला हुआ हृदय ठंढा होगा। यद्यपि कई बार इस इच्छा से कई जगह गए पर पीछे से पछताना ही पड़ा। पश्चात्ताप के सिवाय और कुछ हाथ न आया। जिस शान्ति और आनंद के लिये इतने दूर गए—इतना कष्ट उठाया—इतना खर्च किया वह नहीं मिला। आशा भंग होगई, चित्त की दशा वैसी ही रही। चित्त ने कहा अब कहीं न जायँगे जाने से लाभ ही क्या? पर यह ज्ञान स्थायी नहीं होता। यह आत्मा सुख और आनंद का इतना भूखा है कि हर वक्त उसे खोजता फिरता है; क्योंकि वेदान्त का सिद्धान्त है कि किसी समय यह परमानंद स्वरूप ब्रह्म था—आनंद का समुद्र था। उसी को यहां भी खोजता है। उसीके लिये इधर उधर—बाहर—परिधि में—

संसार चक्र के चारों तरफ अज्ञान वश दौड़ता है। पर, हा ! वहां आनंद कहां ! आनंद तो केंद्र में है—भीतर है—तुम्हारे पास है-तुम स्वयम् हो। लौट पड़ो—घूम आवो—अपने आप की ओर मुड़ जावो—दौड़ना छोड़ दो—चित्त को शान्ति मिलेगी।

❀ ❀ ❀

सत्यकी दृढ़ता।

संसार में जितने अज्ञानी हैं उतने ज्ञानी नहीं हैं। अज्ञान की ओर अधिक भीड़ होती है। जहां भीड़ होती वहां आपसे आप मनुष्य टूट पड़ते है। वास्तव में जहां जाना चाहिये वहां बहुत कम लोग जाते है। जिस व्याख्यान में वा जिस पुस्तक में कुछ सार है उसे बहुत कम लोग सुनते और पढ़ते हैं। निस्सार उपन्यासों और मनोहर व्याख्यानों में बहुत चित्त लगता है। भीड़ की ओर खिचाव होती है; आप से आप लोग—देखें यहां क्या है,—यह कह इकट्ठे हो जाते हैं। प्रायः ऐसे स्थानों पर बेमतलब की बातें निकलती हैं। जाकर, अन्त में लज्जित होना पड़ता है। जिस मत के माननेवाले अधिक हैं—जिस सम्प्रदाय के अनुयायी करोड़ों हैं—वही मत सत्य है—ऐसा मानना सर्वथा भूल है, सत्य की ओर. विज्ञान की ओर एवम् दार्शनिक गूढ़ तत्वों की ओर, सर्व साधारण का चित्त नहीं लगता। ऊपरी तड़क भड़क पर अधिक लोग मोहित हो जाते हैं चाहे भीतर शून्य ही क्यों न हो। वहां बहुत से लोग जाते हैं, अतः हमें भी जाना चाहिये—यदि तुम्हारा ऐसा सिद्धान्त है तो भूले हुए हो। इस वृत्ति को—इस वासना को रोक दो। यदि तुम वहां नहीं गए तो जानो कि तुमने आज इन्द्रियों पर विजय लाभ की। इसी तरह अभ्यास करते जाओ तुमारे लिये शान्ति का द्वार धीरे धीरे खुलता जायगा।

वहां जाने के लिये तुम्हें साथी नहीं मिलेंगे। सत्य के अनुयायी बहुत कम होते हैं। फजूल कामोंमें बहुत साथी मिलते हैं। गँजेड़ियों, भँगेड़ियो और शराबियों के कितन साथी होते हैं क्या आपने नहीं देखा है? फिर साथ की चिंता क्यों है? सत्य के साथी बहुत कम मिलते हैं। किसी काम में हमारे दश पांच साथी मिलेंगे तभी करेंगे—यह भूल है। साथ वाली प्रकृति अच्छी नहीं होती। बहुत से लोग विना साथ के पाखाने भी नहीं जाते—यह कितना अनुचित है। "घूमने के लिये तो साथी अवश्य चाहिये"—यह भी मूर्खता है। दस मनुष्यों के साथ घूमोगे तो तुम्हें स्वच्छ हवा न मिलेगी—तुम्हें किसी गूढ़ विषय के सोचने का समय न मिलेगा—व्यर्थ गप-शप में रास्ता कट जायगा। यथा शक्ति सवारी भी मत लो—किसी की सहायता भी मत मांगो--इससे तुम्हारी शक्ति बढ़ जायगी-तुम्हारा शरीर और आत्मा पुष्ट होगा। अतः यदि तुम्हें सत्य का अनुयायी बनना है—सत्य की खोज करनी—है तो अभी अपने कार्य्य में लग जाओ—साथी की खोज़ में मत रहो। जो तुम्हें करना है अकेले करो—द्वैत की भावना छोड़ दो। तुम अकेले आए हो—अकेले जाओगे—फिर बीच का साथ कैसा? स्मरण करो तुम वह अद्वैतरूप हो जहां द्वैत की गन्ध भी नहीं है। यह अद्वैत-पद ही शान्ति का स्थान है।

अहंकार का रहस्य।

बहुतसे लोग कहते हैं कि अहंकारका नाश करो—अहंकार को मिटा दो—इससे तुम्हारे हृदयको शान्ति मिलेगी। पर लोग यह नहीं सोचते कि चेतनका अहंकार कैसे मिट सकता

है ? चेतनका सबसे बड़ा लक्षण उसमें अहंकारका होना ही जिस चेतनमें अहम्‌का भाव नहीं है वह चेतन कैसे हैं ? हमारे कलममें अहम् भाव नहीं है, दवातमें नहीं है, आसनमें नहीं है, वस्त्रमें नहीं है; क्योंकि ये जड हैं। जड़में अहंकार नहीं है। यदि उनमें अहम्‌का ज्ञान ही होता तो जड़ क्यों कहलाते? अतः अहंकारको मिटा देनेसे मनुष्य भी कलम, दावात, आसन और वस्त्रके समान जड़ हो जायगा; अर्थात् उसकी आत्मा ही न रहेगी—वह स्वयम् मिट जायगा। जब उसकी आत्मा ही न रही—जब वही न रहा—तो शान्ति किसे मिलेगी ? ऐसी शान्ति को धिक्कार है !

अहंकार मिटानेसे मतलब वास्तविक अहंकार मिटानेसे नहीं है। वास्तविक अहंकार—अपने स्वरूपका अहंकार—सुख-दायी है, शान्तिदायी है और आनन्दका समुद्र है। जिस अहं-कारमें तुम मस्त हो रहे हो वह तुम्हारे स्वरूपका नहीं है—वह वाहरी है—वह स्वरूपके अज्ञानसे वा अपने को न जाननेसे उत्पन्न हुआ है। यही अहंकार दुःखदायी है। यह जब मिट जाता है—जब इसका समूल नाश हो जाता है—तब ब्रह्मज्ञान रूपी सूर्य्य शान्ति और आनन्दरूपी प्रकाशके साथ हृदयमें उदय होकर अशान्ति और दुःखरूपी अन्धकारको मिटा देता है।

हम बहुत बड़े जमींदार हैं। वह हमारे ही गांवका एक साधारण कृषक है। इसपर भी वह हमारे लगाये हुए जुर्मानेको नहीं देता ! हम इतने बड़े प्रतिष्ठित हैं पर उस दिन उस पण्डित ने उठकर हमें प्रणाम नहीं किया। हम बहुत बड़े धनवान् हैं, पर हमारे कोई पुत्र नहीं है। हा ! हमारे इस धनको कौन भोगेगा ? हम कुलीन ब्राह्मण हैं पर ये लोग हमें कुछ नहीं सम. झते। अच्छा, इसका बदला लेना चाहिये जिसमें ये लोग भी समझ जायँ कि ब्राह्मणोंका ब्रह्मतेज कैसा होता है ! वह कायस्थ

होकर हमें गाली देता है। हम शूद्र हैं, हम भला क्या कर सकते हैं; हम तो सबकी सेवा हीके लिये बनाये गए। हा! ईश्वरने हमें शूद्र क्यों बनाया ? इन्हीं भावोंको—इन्हीं पूर्वोक्त विचारोंको—असत्य अहंकार कहते हैं। यही अहंकार त्याज्य है। संसारमें जितने पाप हो रहे हैं, विचारने पर उनका कारण अहंकार ही मालूम होगा। हमारे हृदयमें जितने मानसिक क्लेश हैं—जितनी चिन्ताएँ हैं—सबका कारण अहंकार ही है। बिना पूर्वार्जित मानसिक विकार के शारीरिक क्लेश भी नहीं हो सकता। अतः शारीरिक क्लेशों का कारण भी अहंकार ही है। हृदयकी अशान्ति और विक्षेप मिटानेके लिये अहंकारका मिटाना आवश्यक है।

❀ ❀ ❀

हम इनके पिता हैं, इनके पुत्र हैं, इनके श्वसुर हैं, इनके दामाद हैं, इनके महाजन हैं, इनके मालिक हैं, इनके नौकर हैं—ये भाव तब तक हैं जब तक अपने सच्चे स्वरूपका ज्ञान नहीं है। यह अहंकार त्याज्य है। तुम अकेले पिता, पुत्र, श्वशुर, दामाद, प्रजा और राजा सब कैसे हो सकते हो ? तुम वस्तुतः इनमें से कुछ भी नहीं हो। तुम इन सबोंसे पृथक् हो। इन सभोंका सम्बन्ध शरीरके साथ है। शरीरके साथ इनका सम्बन्ध माननेमें हानि नहीं। पर तुमने इसीको अपना सच्चा स्वरूप मान लिया है। ये सब तुमारे हो सकते हैं पर तुम स्वयम् वह नहीं हो। टोपी तुम्हारी है। तुम स्वयम् टोपी नहीं हो। छड़ी तुम्हारी है। तुम स्वयम् छड़ी नहीं हो। आंख कान, नाक, हाथ, पैर सब तुम्हारे हैं; तुम स्वयम् आंख, कान, नाक, हाथ पैर नहीं हो। शरीर तुम्हारा है; तुम स्वयम् शरीर नहीं हो। यही एक भारी गलती है, देखो, तुम्हारे अहंकारके सारे भाव शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं; तुम अपने

शरीरको ही आत्मा समझ रहे हो ! यही अहंकार सारे अनर्थों का कारण है । इसीसे हृदयको शान्ति नहीं मिलती ।

❀ ❀ ❀

महात्माओंका वचन है कि स्वरूपके ज्ञानसे वा ब्रह्म के साक्षात्कारसे अहंकार मिट जाता है । क्या तुम इसका कारण जानते हो ? कारण बहुत स्पष्ट है । सम्राट्को यदि कहीं एक गांवकी जमींदारी मिल जाय तो वह उसका अहंकार नहीं करेगा । इसी तरह जब मनुष्य अपने स्वभाव वा ब्रह्मका साक्षात्कार करता है तो अपने को ब्रह्मस्वरूप ही पाता है । इसी तरह जिसे अपने सच्चे स्वरूपका ज्ञान हो गया—जो अपनेको ब्रह्म समझता है—वह शरीर और संसारके तुच्छ अधिकारोंका अहंकार नहीं कर सकता । वह मनुष्य उस अवस्थाको पहुँच जाता है कि जहां सांसारिक अहंकार विलीन हो जाते हैं । जैसे सूर्यके सामने तारे विलीन हो जाते हैं; उसी तरह "अहंब्रह्मास्मि" रूपी बड़े अहंकारके सामने सांसरिक तुच्छ अहंकार विलीन हो जाता है । अतः यह दुःखदायी अहंकार तभी मिट सकता है जब अपने सच्चे स्वरूपका पूरा ज्ञान हो ।

लोग कहते हैं कि क्या अपनेको ब्रह्म मानना घमण्ड नहीं है ? नहीं । अपनेको ब्रह्म जानना घमण्ड तब हो सकता है जब दूसरों को तुच्छ समझे—दूसरोंको ब्रह्म न समझे—दूसरोंको नीच माने । पर जहां एकता है वहां घमण्ड कैसा ? ब्रह्मज्ञानी जिस अवस्थामें अपनेको ब्रह्म मानता है उस अवस्थामें वह दूसरों को भी वही समझता है ! जिस तरह "अहं ब्रह्मास्मि" कहता है उसी तरह 'तत्वमसि' भी कहता है । "हम ब्रह्म हैं, तुम ब्रह्म हो, और सारा संसार ब्रह्म है"—इस ब्रह्मज्ञानमें घमण्ड कहां ? घमण्ड तो द्वैतमें होता है ।

चेतनके अहंकारका लोप कभी नहीं हो सकता। पर लोग कहते हैं कि ब्रह्मज्ञान होने पर अहकार नहीं रह जाता; ब्रह्म ज्ञानी वही है जिसका अहंकार मिट गया हो। इसका कारण यह है कि "अहम्" की स्थूलता वहीं है जहां "त्वम्" भी है। जहां तुम नहीं वहां हमका वैसा स्थूल भाव नहीं आता। अहम् का झगड़ा वहीं उठता हैं जहां त्वम् छेड़ छाड़ करनेके लिए तैयार रहता है। विना त्वम्के अहम्का स्थूल आकार मिट जाता है। इसीसे कहा है कि ब्रह्मज्ञानियोंका अहंकार मिट जाता है। क्योंकि ब्रह्मज्ञानमें द्वैत नहीं है; एकता है। ब्रह्मज्ञानीके लिए "त्वम् कोई चीज ही नहीं; उसके लिए सारा संसार ब्रह्म है वह स्वयम् भी ब्रह्म है। अर्थात् संसारमें कोई भी पेसा पदार्थ नहीं है जो उसके सच्चे स्वरूपसे पृथक् हो। पेसी अवस्थामें यह स्थूल अहंकार मिट जाता है। पर आत्मा चेतन है, इससे इसका वह अनिर्वचनीय अहंकार जिसमें "अहं ब्रह्मास्मि" का ज्ञान होता है वह कभी नहीं मिटता।

अहंकार, शरीरका करना पाप है। आत्माके गुण शरीर पर आरोपण किए जाते हैं—यही अधर्म है। बराबर देखते हो कि तुम्हारे भाई तुम्हारे पड़ोसी, तुम्हारे साथी मरते चले जाते हैं; तथापि तुम अपने को अविनाशी समझते हो। जब पड़ोसमें कोई मर जाता है या जब तुम किसी मुर्देके साथ जाते हो, तुम्हें ज्ञान हो जाता है! उस समय कहते हो कि एक दिन हमें भी मरना है। इस ज्ञानसे तुम्हारा जीवन बहुत कुछ सुधर जाता; पर यह ज्ञान ठहरने नहीं पाता, उसी वक्त अहंकारमें विलीन हो जाता है। अहंकार उसे दबा लेता है। अहंकार कहता है कि हम नहीं मरेंगे। पुराण और शास्त्र कहते हैं कि तुम एक दिन अवश्य मरोगे, सारी मजहबी दुनिया कहती है कि तुम्हें एक दिन यहांसे जाना होगा, महात्माओंका वचन है कि अपने

को अमर न समझो जो करना हो कर लो। और सबका उपदेश एक तरफ़। हम स्वयम् देखते हैं कि हमारे ही सामने दूसरे मनुष्य मरते चले जाते हैं; फिर भी जो हम अपनेको अविनाशी समझते हैं—यह पागलपन कहांसे आया ? इसका कारण यह है कि वास्तवमें हम अविनाशी ही हैं—वास्तवमें "हम" जिसका नाम है वह नाशमान नहीं। पर भूल यह है कि तुम अहंकार वश जो वास्तवमें अविनाशी है उसे नहीं पहचानते किन्तु इसी शरीर हीको अविनाशी मानने लगते हो। तुम यह समझते हो कि हम जो गोरे वर्णवाले यहांके जमीदार हैं उसका कभी नाश नहीं होगा। हम चाहे जितना अंधेर कर लें—हम अमर हैं। जो गुण अपने सच्चे स्वरूप या परमात्माका है उसे न पहचान कर यह गुण किसी एक भिन्न व्यक्ति वा जड़ शरीरका समझना ही विपरीत ज्ञान है और यही विपरीत ज्ञान पाप है। अतः यदि तुम्हें अविनाशी होना है तो अहंकार छोड़ कर उस सच्चे अविनाशीको पहचानो; जिसे तुम अविनाशी जानते हो वह अविनाशी नहीं है। यह शरीर भी यदि असंख्य आयु वाला हो सकता है तो उसीके ज्ञानसे, उस अजर अमर और अविनाशीके ज्ञानसे, यदि तुम चाहोगे तो तुम्हारा जीवन मरण तुम्हारे अधीनमें होगा, तुम्हारा जीवन मरण तुम्हारी इच्छाका खेल होगा।

❀ ❀ ❀

चाहे हम हजारों पाप करें पर अपनेको पापी नहीं मानते। चोर भी चोर कहनेसे रुष्ट हो जाते हैं। चाहे हम पापावतार भी हों पर जब हमें लोग धर्मावतार कहते हैं तो हम प्रसन्न हो जाते हैं। संसारमें कोई अपनेको पापी नहीं कहता; अपना अपराध अपनेसे स्वीकार नहीं करता। यदि किसी अपराधीने अपना अपराध स्वीकार भी किया, तब भी वह घूम फिर कर यह

सिद्ध करना चाहता है कि हमने यह इस कारणसे किया। अर्थात् यदि हमने उसे मार डाला तो इस लिए कि वह भी हमारे प्राणका भूखा था। जब कोई निस्तार नहीं देखते हैं तभी अपराधी अपना अपराध स्वीकार करते हैं। वह भी इसी आशा पर कि इससे ही शायद न्यायाधीश हमें अच्छा समझें। इन सब बातोंके होनेपर भी हृदयसे कोई अपना अपराध स्वीकार नहीं करता। यह क्यों? पापी होनेपर भी लोग अपनेको निष्पाप क्यों समझते हैं? इसका कारण यह है कि वास्तवमें जो "हम" है—जहांसे यह "हम" उठता है—वह निष्पाप है—वह निर्विकार परमात्मा है। पर भूल इस जगह है कि हम उस सच्चे "हम" को न पहचान कर इस विकारवान् और पापपूर्ण शरीरको ही निष्पाप कहने लगते हैं। हम विकारवान्को निर्विकार और पापीको निष्पाप कह रहे हैं इसीसे हमारा उद्धार नहीं होता। अतः हमारा परम कर्त्तव्य यह है कि हम इस पापके समुद्रसे निकल कर उस अपने सच्चे स्वरूप—अपने निष्पाप स्वरूप—को पहचानें और उसकी शरण लें। यही आनन्द स्वरूप परमात्माका निवास है जो हमारे सच्चे स्वरूपसे अलग नहीं है।

❀ ❀ ❀

पुराणों और शास्त्रोंमें संतोषकी बड़ी महिमा लिखी है। पतंजलि ऋषिने अपने योग-दर्शनमें कहा है कि न "संतोषादनुत्तमसुखलाभः षादनुत्त सुख लाभः" अर्थात् संतोषसे अनुत्तम् सुखकी प्राप्ति होती है। उपदेशक, कथा कहनेवाले, पण्डितजी, मौलवी, फकीर और पादरी सभी संतोषकी महिमा गाते हैं। पर संतोष, वास्तवमें कोई नहीं करता। उपदेशक, मौलवी, फकीर और पादरी किसीमें संतोष नहीं देखा गया। उपदेश देना और बात है पर "संतोष" जिसे कहते हैं वह कभी किसीमें नहीं हो सकता,

लोग कहते हैं कि अमुक साधु परमार्थी है—उसमें संतोष है; कभी नहीं। अर्थी मानी यदि मतलबी है तो परमार्थी मानी बड़ा मतलबी है। परम मानी बड़ा और अर्थी मानी, मतलबी। अतः विचार दृष्टिसे से देखो जो परमार्थी है वह अपनी बहुत बड़ी तृष्णामें लगा है। खूब विचारनेसे विदित होगा कि वास्तवमें किसी को संतोष नहीं है—इसका क्या कारण? क्यों लोगोंको संतोष नहीं होता? बात यह है कि जो कभी सम्राट् था—जिसका खर्च कभी बहुत बढ़ा चढ़ा था—वह एक गांव पर संतोष नहीं कर सकता। इसी तरह हम कभी सारे विश्वके मालिक थे—कभी हम वह सम्राट् थे जिनके अधीन करोड़ों महाराज थे। इस दशामें हमें संतोष कैसे हो सकता है? हृदयमें सच्चा संतोष और सच्ची शान्ति उस समय आवेगी जब हम उसी अपने पूर्वपदको प्राप्त कर लेंगे। अतः अहंकारवश इसी सांसारिक अवस्थामें संतोषी बननेका यत्न मत करो। उस स्वरूपको पहचानो जिसे पहचान कर मनुष्य सच्चा संतोषी बन सकता है। वह ऐसा पद है कि वहां पहुँचने पर आपसे आप ये सांसारिक विषय तुच्छ मालूम होंगे। मनुष्य कहता है कि हमारी अमुक नौकरी लग जायगी, अमुक बात हो जायगी, इतना मासिक वेतन हो जायगा तो हमें संतोष हो जायगा। यह व्यर्थ है। संसारमें कोई भी पद प्राप्त कर हम संतोषी नहीं हो सकते। संतोष या शान्ति तब मिलेगी जब बाहरी अहंकार छूट जायगा और अपने सच्चे स्वरूपकी प्राप्ति होगी।

वशीकरण-मन्त्र।

तुम कहते हो कि वशीकरण-मंत्रका आजकल पता नहीं चलता, उसे कोई नहीं जानता। यह बात नहीं है। वशीकरण का मंत्र अब भी संसारमें वर्तमान है—केवल तुम उसके सच्चे

गुरुको नहीं जानते; उसको भूले हुए हो। वशीकरणका सच्चा गुरु वही है जो सारे संसारको वशमें किए है। सूर्य्य, चन्द्रमा, तारे तथा अनेक ग्रहोपग्रह उसके वशमें होकर नाच रहे हैं। इतने बड़े संसारमें एक अणु भी नहीं है जो उसके वशमें न हो। उसको यद्यपि किसीने इन आंखोंसे नहीं देखा तथापि उसके माननेवाले अधिक हैं। उसके माननेवालोंमेंसे हज़ारोंमें एक ही होंगे जो उसके अस्तित्त्वको सिद्ध कर सकें। तथापि उसमें वश करनेकी इतनी शक्ति है कि सारा संसार बिना उसे प्रत्यक्ष किए ही उसका सेवक हो रहा है। उसी परम गुरुका नाम ईश्वर, ब्रह्म वा परमेश्वर है। यदि तुम वशीकरण चाहते हो तो इसीकी शरणमें आ जाओ। उसके जितने अवतार हुए हैं सबमें मोहनी शक्ति थी; सबको वशीकरणका ज्ञान था। वह सबसे बढ़कर तान्त्रिक है। भगवान् रामचन्द्रने अपने वशीकरण-मंत्रसे बन्दरोंको भी वशमें कर लिया था। कृष्णचन्द्रका वशीकरण भी संसारमें प्रसिद्ध है। उसका वशीकरण-मंत्र और कुछ नहीं, उसके स्वरूपमें ही वश करनेकी शक्ति है। वह स्वयम् ऐसा है—उसका आत्मा ही ऐसा है—जिससे वशीकरण स्वयम् उसके वशमें हो सकता है। यही कारण है कि जिसने अपनी आत्मा को उससे मिला दिया है वह भी वैसा ही हो गया। व्यास, बुद्ध, शंकराचार्य्य और ईसामसीह आदि किसी पर वशीकरण का प्रयोग नहीं करते थे; केवल उन्होंने अपनी आत्माको उससे मिला दिया था। बस, यदि तुम वशीकरणकी खोजमें हो तो सब कुछ छोड़ दो। वह मंत्र यही हैं कि अपने आत्माको उस जगदीश्वरमें मिला दो उसमें मिल जाओ। तुम खयाल करो कि हम उससे अभिन्न हैं जो सारे संसार को वश में किए है। "हम उससे अभिन्न क्या"—वास्तविक बात तो यह है कि हम वही हैं। हममें और उसमें त्रिकालमें भी किसी प्रकारकी भिन्नता नहीं हो

सकती। ईश्वरकी अभिन्नताका ज्ञान ही वशीकरण और शान्ति का मूलतत्त्व है !

स्वास्थ्य-रक्षा।

आजकल स्वास्थ्य-रक्षापर जितने अच्छे अच्छे लेख लिखे जाते हैं उनमें स्वाभाविक आहार विहार पर वा प्राकृतिक नियमों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अमुक खाद्य मनुष्यका स्वभाविक भोजन है; अमुक नहीं। पशु अपना प्राकृतिक वा स्वाभाविक भोजन करते हैं। जंगली पशु पक्षियोंमें कोई वैसा रोगी नहीं देखा जाता। उनमें हम लोगोंकी तरह न वैद्य हैं न डाक्टर। हां, जिन पशु पक्षियोंको मनुष्योंने पाल रक्खा हैं वे अवश्य रोगी देखे जाते हैं। कारण यह है, कि इन पशुओंके स्वाभाविक आहार विहारमें भेद पड़ जाता है। इन बातोंसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि यदि मनुष्य भी पशुओंकी तरह अपना स्वाभाविक भोजन करे और उसके आहार विहार भी प्रकृतिके नियमानुसार हों तो रोगी नहीं हो सकता। यह बात यद्यपि ठीक है, पर मनुष्य एक ऐसा प्राणी है कि उसका कल्याण केवल इसी नियमके अनुसार नहीं हो सकता। मनुष्य विचार स्वरूप है। अतः इसका आरोग्य, इसकी शान्ति और इसका स्वास्थ्य इसके उत्तम और उच्च विचारों पर निर्भर है। जिस मनुष्यका जितना ही उच्च और उत्तम विचार होगा वह उतना ही निरोग और स्वास्थ्ययुक्त होगा। उच्च विचार आरोग्य और शान्तिका मूल है।

जिस प्राणीका जो स्वाभाविक भोजन है उसे वह उसकी स्वाभाविक अवस्थामें खा सकता है स्वाभाविक भोजनका यही लक्षण है। शेरका स्वभाविक भोजन मांस है। वह बकरीको मारकर उसी समय चट कर जाता है। घर ले जाकर, पकाकर, नकम मिर्च लगाकर, नहीं खाता। मनुष्य पकाता है, नमक मिर्च लगाता है, तब खाता है। क्यों? यह उसका स्वाभाविक भोजन नहीं है। बैलका स्वाभाविक भोजन घास है। बैल हरी घास देखकर उसी समय उसकी स्वभाविक स्थितिमें उसे चर लेता है। मनुष्य भी कई एक प्रकारकी घासको शाक बना कर खाता है; पर उसकी स्वाभाविक अवस्थामें नहीं; पकाकर; नमक मिर्च डालकर खाता है। मनुष्य और बन्दरका स्वाभाविक भोजन फल है। मनुष्य अमरूत और आमके बागमें जाता है और उसे तोड़कर, उसकी स्वाभाविक अवस्थामें खा जाता है। मनुष्यके अधिक तर स्वभाव घास और मांसखाने वाले पशुओं से नहीं मिलते; इसके स्वभाव फल भोजी बन्दरोंसे मिलते हैं। अतः मनुष्यका स्वभाविक भोजन फल है। फल भोजी मनुष्य बहुत निरोग रह सकता है। पर जिस प्राणीका जीवन विचार पूर्ण है उसके लिए केवल यही नियम कल्याणकारक नहीं हो सकता। मनुष्यको स्वास्थ्य रक्षाके लिए केवल उच्च विचार की आवश्यकता हैं जिसका वर्णन नीचे किया जायगा।

❀ ❀ ❀

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो उन्नति करता हुआ एक ऐसी अवस्थाको पहुंचा है जहां वह प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन कर रहा है। द्वैत सिद्धान्तमें प्रकृति अलग और पुरुष अलग है। प्रकृति जड़ है पुरुष, चेतन। विचारदृष्टिसे देखने पर मालूम हुआ है कि मनुष्य योनिमें आकर यह प्राणी सांसारिक नियमों का उल्लंघन करता हुआ क्रमशः ईश्वरकी ओर झुक रहा है।

प्रकृतिके नियमानुसार दुबले प्राणी सबल प्राणियोंके आहार हैं। संसारमें सर्वत्र दुर्बल प्राणी बलवानों द्वारा दबाए जाते हैं; संसारका यही प्रधान नियम है। पर उच्च विचारके मनुष्योंने जो नियम, जो कानून, जो धर्म्मशास्त्र बनाए हैं उनमें इसका विरोध किया है। सारे संसारमें कानूनके अनुसार कोई बलवान दुर्बलको दुःख नहीं दे सकता। प्रकृति बलवानोंकी हितैषिणी है और ईश्वर दीनबन्धु। ईश्वरके भक्त दीनरक्षक हैं और प्रकृति के दीनभक्षक। संसारके जिस प्रदेशमें जितना ही अज्ञान है; वहांके मनुष्योंमें जितनीही पशुता और असभ्यता है वहां उतना ही "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाला नियम चरितार्थ होता है। पर सभ्य मनुष्योंमें यह बात नहीं है। वह क्रमशः दीनबन्धुकी ओर जा रहा है। जो मनुष्य जितना ही उसके निकट पहुँच गया है वह उतना ही दयाशील हो गया है। ऐसे दयावान् मनुष्य महात्मा कहलाते हैं। इन नियमोंपर ध्यान देने से मालूम होता है कि मनुष्य वह प्राणी है कि जो सर्वथा प्राकृतिक नियमों वा सांसारिक नियमोंके अनुसार नहीं चल सकता न चलता है न चलनेके लिए इस योनि में आया है। मनुष्य योनि इस मृत्यु लोक की अन्तिम योनि है। जीवात्माका प्रवेश इस योनिमें इस लिए हुआ है कि वह इस योनिमें आकर, अपने ज्ञानकी उन्नति कर, संसार का उल्लंघन कर, परमात्माके पास पहुंच जाय वा उसमें मिल जाय। पर बहुतसे लोग स्वास्थ्य रक्षाके बहाने मनुष्यको फिर बन्दर और पशु बनाना चाहते हैं। पर ऐसा नहीं हो सकता। मनुष्य योनि में आकर कोई प्राणी प्रकृतिके नियमानुसार सर्वथा नहीं चल सकता। अतः स्वास्थ्य-के पूर्वोक्त नियम उतने महत्वके नहीं हैं। मनुष्य को, अपने उस बलको जागृत करना चाहिए जिससे प्रकृति स्वयम् उसकी परिचारिका वा दासी हो जाय। सांसारिक नियम उसकी इच्छासे

उसके अनुसार हों—उसके गुलाम हों; न कि मनुष्य ही उसके अनुसार चले वा उसका गुलाम बन जाय। विचार करो, तुम्हारे में वह शक्ति वर्त्तमान है जिससे संसारके सारे प्राकृतिक नियम तुम्हारे गुलाम हो सकते हैं; तुम्हें उनके अनुसार चलने की उतनी आवश्यकता नहीं। संसार में परमात्मा से बढ़ कर निरोग और निर्विकार बस्तु कोई नहीं है। बस, उसीका ध्यान करो—अपनी आत्माको उसीमें जोड़ दो—उसी में मिला दो तुम भी निरोग हो जाओगे। "मिला दो—" यह शब्द भी निम्न कक्षा के मनुष्यों को समझानेके लिए है। वास्तव में तुम वही हो। तुम स्वयम् निरोग, निर्विकार और निरामय परमात्मा हो; केवल उस * अज्ञान को हटा दो जिससे तुम अपने को उससे अलग समझते हो, निरोग और स्वास्थ्ययुक्त होनेका यह सर्वोत्तम मार्ग है।

❁ ❁ ❁

उच्च भावना द्वारा आरोग्य लाभ।

कई एक विद्वानोंका कथन है कि पशुओंको अपना भोजन पचानेके लिए न औषधि खानेकी आवश्यकता पड़ती न कसरत करनेकी। प्रकृतिने स्वयम् ऐसा प्रबन्ध किया है कि प्रत्येक प्राणी को भोजनोपार्जन में इतना परिश्रम करना पड़ता है जो भोजन पचानेके लिए पर्य्याप्त है। मनुष्य भी यदि अपने भोजन का उपाय अपने हाथ से करे तो उसे भी उसके पचानेके लिए कसरत या औषधि खाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। जैसे, भोजनके लिए आप स्वयम् खेती करें, गेहूँ खेत से काटें, पीसें,

---

* इसके वास्ते इसी लेखककी लिखी हुई—"वेदान्त-सिद्धान्त"—नाम की पुस्तक अवश्य पढ़िये।

अपने हाथ से पानी भर लावें, रोटी पकावें, तब खावें। इस तरह से अपना सब काम अपने हाथसे करने पर मनुष्य को भी भोजन पचानेके लिए औषधि या कसरत की आवश्यकता न पड़ेगी कसरत भी प्राकृतिक नहीं है। कोई पशु कसरत नहीं करता। कसरत मनुष्योंने अपनी बुद्धिसे निकाली है। पशुओं को आप से आप अपना भोजन ढूँढनेमें इतना परिश्रम पड़ जाता है कि कसरत करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। पर मनुष्य ऐसा नहीं करते, इसीसे रोगी देखे जाते हैं। यह बात भी ठीक है कि मिहनत करना आवश्यक है पर यह मत सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं है। मनुष्य पशु नहीं हो सकता। मनुष्य योनि केवल खाने ही और मेहनत करनेके लिए नहीं है। मनुष्य योनि ज्ञानोपार्जन द्वारा आत्मिक उन्नतिके लिए है। और आध्यात्मिक जीवन में शरीर से उतना काम नहीं लिया जा सकता। मनुष्य को चाहिए कि अपनी आत्मा को उस परमात्मा में जोड़ दे जो सारे संसार को अपने में लीन कर पचा लेता है। योगिराज शंकर जी ने इसी अपने स्वरूप के ध्यान से वा चिन्तन से कालकूट ऐसे विष को पचा लिया था। तुम सर्वदा यही सोचते रहते हो कि हमारी पाचनशक्ति दुर्बल है। हमारा पेट निरोग नहीं है—इसी भावना ने तुम्हारी पाचन शक्ति को दुर्बल बना दिया है। भावना का प्रभाव कितना पड़ता है—भावना के प्रभाव से कितने लोग रोगी हो जाते हैं—इसका अनुभव सभी पढ़े लिखों को है। तुम भावना करो कि हमारे पेट में हमारे भीतर उस आत्मा का निवास है जो कालकूट विष को भी पचा सकता है। "भीतर निवास है" यह भी निम्न कक्षा की भावना है। तुम स्वयम् वही हो जिसमें सारा संसार लीन होकर पच जाता है।

❀ ❀ ❀

यदि तुम्हारे पेट में बीमारी है तो ब्रह्मज्ञान का उपार्जन करो;

बीमारी अच्छी हो जायगी। नित्य उठ कर यह भावना करो कि हमारे पेट में वही शक्ति है जो अगस्त्य ऋषि, भीम, कुम्भकरण और महादेव के पेटमें थी। भावना करो कि हमारा पेट दुर्बल नहीं है—हम महादेव हैं—तुम भी निरोग हो जाओगे। मनुष्य केवल ओषधियों या प्राकृतिक नियमों का पालन कर निरोग नहीं हो सकता। पशुओं में चिन्तन, मनन भावना और विचार की शक्ति इतनी कम होती है कि वह नहीं के बराबर है। पर, मनुष्य, शरीर से कहीं अधिक, बुद्धि और विचारसे काम लेता है। मनुष्यके शरीरपर प्रकृतिके नियमोंका उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना उसके चिन्तन, मनन, विचार, बुद्धि और भावनाका पड़ता है। मनन करने हीके कारण इसका नाम मनुष्य पड़ा है। मनुष्य वही है जैसा उसका विचार और सिद्धान्त है। अतः निरोग होनेके लिए भावना और विचार की उच्चता आवश्यक है। "हम जीवात्मा हैं, शक्तिहीन हैं, रोगी हैं"—यह नीच भावना है। इसे त्याग दो। इससे कुछ लाभ नहीं है। आज ही से भावना करो कि हम वह है जो निरोग और निर्विकार है; हमें कोई रोग नहीं हो सकता। इसका प्रभाव शरीर पर भी पड़ेगा वह भी साधारण नहीं। इसका प्रभाव ऐसा पड़ेगा कि आप स्वयम् अपने शरीरकी दशा देखकर चकित होंगे। ब्रह्मकी भावना शान्ति और आरोग्यका कोश है।

❀ ❀ ❀

महामारीके फैलने पर कितने लोग डर कर उसकी भावना कर उसे अपने पास बुला लेते हैं। यदि तुम स्मरण करो तो मालूम होगा कि तुम्हें भी कितने रोग भावनाके कारण हो गए हैं। जिस औषधि वा वैद्यपर विश्वास नहीं है उसकी दवासे तुम कभी अच्छे नहीं होते। जिस औषधि या वैद्यपर विश्वास है उसकी दवासे अच्छे हो जाते हो। इसका क्या कारण?

इसका कारण यह है कि ऐसी औषधिके खानेपर तुम यह भावना करते हो कि अब हम अच्छे हो जांयगे। बस अच्छे हो जाते हो हमने केवल पानी देकर सैकड़ों रोगियोंको अच्छा कर दिया है। बात यह है कि उस पानीको उस वास्तविक हम (परमात्मा) ने दिया था जिसके छू देने मात्र से जल अमृत हो जाता है। होमियो पैथिक औषधियां क्या हैं? एक सरसो बराबर गोली एक बोतल पानीमें डाल देते हैं। फिर उसका एक बूंद लेकर एक बोतल जलमें मिलाकर रोगी को पीनेके लिये देते हैं। रोगी क्यों अच्छा हो जाता है? दवा की भावनासे। इन सब औषधियोंमें केवल रोगी ही की भावना नहीं काम करती वैद्यकी भावना भी काम करती है। जिस औषधि को देते समय वैद्यकी दृढ़ भावना है कि इससे रोगी अच्छा हो जायगा उसे खाकर रोगी अवश्य अच्छा हो जायगा। होमियो पैथिक, जल चिकित्सा, भस्म और लौंग इत्यादि देकर वा झाड़ फूंककर रोगियोंके अच्छा करनेमें अपनी भावना भी, बहुत काम करती है। महात्मा यदि अपने दृढ़ भावनासे किसी रोगीको छू दे तो वह निरोग हो सकता है। अतः यह सिद्ध होता है कि मनुष्य योनिमें भावनाकी प्रधानता है। विना भावना के उच्च हुए मनुष्य सर्वथा निरोग नहीं हो सकता।

❀ ❀ ❀

मनुष्यके लिये सबसे बड़ा रोग अपने स्परूपका अज्ञान है। जहां अपने स्वरूपका अज्ञान नहीं वहां रोग का ठहरना कठिन है। जिसे ब्रह्मज्ञान नहीं है वह कभी निरोग नहीं कहला सकता। विचार करने से मालूम होगा कि मानसिक वा आध्यात्मिक उन्नतिसे सांसारिक रोग आपसे आप मिट जाते हैं। खटाईके चिन्तन मात्रसे शरीर पर जो प्रभाव पड़ता है वह किसीसे छिपा नहीं है, अर्थात मुँह में पानी भर आता

है। एक युवा पुरुष पर युवती का चिन्तन मात्रभी बिना अपना प्रभाव डाले नहीं रहता। किसी भयके स्मरण होने से मनुष्य का शरीर लाल हो जाता और कांपने लगता है। इन सब बातों से मालूम होता है कि यदि हम किसी सच्चे निरामय, निरोग और निर्विकारका नित्य चिन्तन करें—स्मरण करें तो अवश्य निरोग हो जांयगे। ऐसा आरोग्य का भंडार, निरोग, निरामय और निर्विकार वह परमात्मा ही है दूसरा नहीं। अतः उस परमात्मा का स्मरण, उसका चिन्तन, उसकी भावना स्वास्थ्य रक्षा की सब से अच्छी दवा है। केवल चिन्तन ही से पूरा कार्य्य नहीं होगा किन्तु इस विश्वास के साथ चिन्तन करे कि वह निरामय है अतः उसके चिन्तन से सारे रोग आप से आप नष्ट हो जांयगे।

❀ ❀ ❀

"हम उसका स्मरण कर रहे हैं"—यहभी निम्न कक्षा की भावना है। इससे भी पूरी शान्ति नहीं मिल सकती। सच्ची शान्ति तब मिलेगी जब तुम उससे अभिन्न हो जाओगे। उस समय तुम्हारा हम कहना सांसारिक न होगा किन्तु उस हमका अर्थ परमात्मा ही होगा। इस विचार में तुम का प्रयोग भाषा की शैली बैठाने के लिए है। वास्तव में "तुम" कुछ नहीं, सब वही है। इस विचार में "हम" का प्रयोग इस शरीर से सम्बन्ध नहीं रखता यह भी उसकी ओरसे है। यह शान्तिदायी विचार उस परमात्मा का उपदेश है जो शान्ति और आनन्द का समुद्र है।

अमर होनेका उपाय।

वेदान्त का सिद्धान्त है कि यह सारा संसार, विचार, खयाल और कल्पना मात्र है। और यही रूप आत्मा का भी है। आत्मा भी विचार स्वरूप है। मतलब यह है कि वेदान्त के अनुसार आत्मा और संसारमें कुछ भेद नहीं है। आत्मा, चेतन है। सारा संसार भी चेतन है। जड़ तो भ्रमसे विदित होता है। जितना हम लोग विचारते जाते हैं, यह बात प्रत्यक्ष होती जाती है। "सर्व खल्विदं ब्रह्मं—" का सिद्धान्त सर्वदा सत्य है। सारा संसार ब्रह्म हैं। इसका अर्थ यह है कि सारा संसार आत्मा है, चेतन है। चेतन विचार मात्र है अतः संसार की सारी बातें विचार मात्र हैं। जब सारा संसार विचार मात्र है तो जिसका यह विश्वास है, यह विचार है—कि यह शरीर नहीं छूटेगा—यह शरीर नहीं मरेगा—वह कैसे मर सकता है? बिना हमारे विचार के—बिना हमारी इच्छा के—हमारा शरीर नहीं छूट सकता। हमारा अमर होना या मरना हमारे अधिकार में है। यदि तुम्हारा दृढ़ विश्वास है कि हम नहीं मरेंगे तो तुम नहीं मर सकते। तुलसीदास जी ने भी कहा है " भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ। " शंकर—अर्थात परमात्मा क्या है? विश्वास है। तुलसीदास जी का मत हैं, ईश्वर और विश्वास दोनों दो पदार्थ नहीं हैं—एक ही हैं। ईश्वर विश्वासस्वरूप ही है। सारी बातोंका तात्पर्य्य यह है कि विश्वास ही ईश्वर है और ईश्वर अमर हैं ईश्वरकी इच्छा को कोई रोक नहीं सकता। बस यह बात सिद्ध है कि जिसका विश्वास है कि हम नहीं मरेंगे उसे कभी मौत नहीं मार सकती।

सब को मरते देख, और सुन कर तुम्हें यह विश्वास हो गया है कि मनुष्य को मरना आवश्यक हैं। यही विश्वास काल

है। इसीका नाम मृत्यु है। यही मनुष्यों को मारती है। पर मृत्यु ब्रह्म से भी प्रबल नहीं है। मृत्यु कोई वस्तु नहीं। मृत्यु जिसके निकट आती है वह कमजोर हो जाता है—बेकाम हो जाता है फिर साक्षात् मृत्यु में क्या है? कुछ नहीं मृतक में कुछ शक्ति हो सकती है? कभी नहीं। मृत्यु स्वयम् मृतक है, उसमें कुछ नहीं है। जहां सब प्रकारकी शक्तियों का अभाव है उसी का नाम मृत्यु है। ऐसी मृत्यु जीवित और शक्तिमान् मनुष्य पर विजय कैसे प्राप्त कर सकती है? मनुष्य कितना ही निर्बल हो पर मृत्युसे बलवान् है। और मनुष्य में भी निर्बलता कैसी? मनुष्य तो आत्मा है और आत्मा ब्रह्म है। ब्रह्म सर्व शक्तिमान् है फिर आत्मा और मनुष्यशक्ति हीन कैसे हो सकती है? मनुष्य मरता है तो अपने विश्वास से—अपनी इच्छा से—नहीं तो मौत क्या वस्तु है कि उसे मार सके। बिना तुम्हारी इच्छा के मौत तुम्हारे पास नहीं आ सकती।

❀ ❀ ❀

अच्छा, अभी सारे विश्वकी बात जाने दीजिए। पर इस सारे शरीर पर तो अपनी इच्छा का ही राज्य है। हाथ के भीतर कोई दूसरा हाथ नहीं है, जो हाथ को फैलाता, सिकोड़ता उठाता और गिराता है। इसका कारण हमारी इच्छा है। जब हमने इच्छा की कि हाथ सिकुड़ गया; जब इच्छा की तो फैल गया। इच्छा करते देर नहीं कि हाथ गिर गया फिर ज्यों ही इच्छा की कि उठने लगा। इस तौर से सारे अंग आपकी इच्छा के आधीन है। जब प्रत्येक अंग आपकी इच्छाके आधीन हैं तो उसके छोटे छोटे हिस्से भी आपही के आधीन हैं—यह सिद्ध है। हाथ आधीन हैं तो अंगुलियां भी आधीन में हैं। इसी तरह विचार करके देखिये तो आपके शरीर के एक एक परमाणु आपके अधीन हैं—आपकी इच्छाके अनुसार नाच रहे हैं।

अच्छा, तो जब कि शरीर के सारे परमाणु पर आपका अधिकार है तो यह शरीर आपकी बिना इच्छा के नष्ट कैसे हो सकता है? जब यह आपकी इच्छा से उठता बैठता, दौड़ता और चलता है, तो फिर बिना आपकी इच्छा के यह निश्चेष्ट कैसे हो सकता है? और बिना निश्चेष्ट हुए—बिना जड़ हुए—इस शरीर को मरा हुआ कौन कह सकता है? अतः अपने शरीर पर अपनी इच्छा और विश्वास का राज्य देख कर हम कह सकते हैं कि इच्छा और विश्वास के सुधार से सारे रोगों और मृत्यु को जीत लेना कोई कठिन कार्य्य नहीं हैं। विश्वास रक्खो कि मृत्यु और रोग तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुम्हारे शरीर के भीतर किसी का नहीं चल सकता।

❀ ❀ ❀

किसी न किसी समय कोई न कोई रोग हो जाता है। विचारिये तो उसका कारण कोई न कोई शंका ही निकलेगी—कोई न कोई अपनी भावना ही निकलेगी। यह एक बड़ा गूढ़ तत्व है विचारने से स्पष्ट मालूम होगा कि बिना अपनी इच्छा के कोई नहीं मरता। एक मनुष्य मृत्युशय्या पर पड़ा है—मरने के निकट है—पर उसका प्रियपुत्र ४०० कोस पर बाहर है। वह कहता है कि "बिना पुत्र के देखे हमारा प्राण नहीं निकलेगा; उसे तार देकर बुला लो। मरते समय तो उसका मुख देख लें।" पुत्र जब तक नहीं पहुँचता इसका प्राण नहीं निकलता है। तार दिया गया, पुत्र पहुँच गया, पिताने पुत्रको देखा और मर गया। ऐसी घटनाएँ बराबर घटती हैं। बहुतसे लोग बीसों बार इस प्रकार की घटना अपनी आंखों देख चुके हैं। इससे क्या मालूम होता है? इससे मालूम होता है कि जबतक उसकी इच्छा नहीं थी तबतक नहीं मरा। बिना पुत्रके देखे वह मरना नहीं चाहता था इस लिए

वह तब तक नहीं मरा जब तक उसने पुत्रको नहीं देखा। देखने पर मर गया। क्योंकि पुत्र-दर्शन के बाद उसके भीतर जीने की कोई प्रबल इच्छा नहीं रही। जीने की कोई प्रबल इच्छा न रहनेसे थोड़ीसी तकलीफ के बाद मनुष्य मरने की इच्छा कर लेता है। पर, यहां, इन विषयों को विस्तार से नहीं लिखा जा सकता। खूब विचार करनेसे मालूम हो जायगा कि कोई बिना अपनी इच्छा के नहीं मरता। चेतन में बड़ा ज़ोर है इस की मौत कुछ नहीं कर सकती। कभी चेतन मनुष्य मरते नहीं देखा गया। मरनेके पहले सब लोग बेहोश, संज्ञाहीन या अचेतन हो जाते हैं तब मरते हैं। बेहोश होने पर मृत्यु का वश चलता है। बेहोशी और रोग भी किसी न किसी अपनी इच्छा ही से होता है। यह प्रसिद्ध है कि योगी और ब्रह्मज्ञानी बिना अपनी इच्छाके नहीं मरते; मृत्यु उनके आधीनमें हो जाती है। कागभुशुण्डि, लोमश, नारद, अश्वत्थामा गोरक्ष और भर्तृ-हरि आदि कितने योगी अमर हैं। हज़ारों की संख्या में अब भी मृत्यु को जीतने वाले योगी हिमालय पर विचर रहे हैं। यदि इन लोगों ने मृत्यु को जीता है तो इसका कोई नियम अवश्य होगा—इसकी कोई एक नीति अवश्य होगी। लोग कहते हैं वह नीति—वह नियम—गुप्त है। गुप्त इसी लिए है कि वह बात तुम्हारी समझ में नहीं आती नहीं तो संसार का सारा नियम प्रत्यक्ष है। तुम ब्रह्मज्ञान तो समझ गए; यह समझ गए कि हम ब्रह्म हैं। पर यह नहीं समझे कि ब्रह्म को मृत्यु कैसे मार सकती है? तुम्हारी इच्छा ब्रह्म की इच्छा है। संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं जो ब्रह्म की इच्छा को टाल सके? क्योंकि सारा संसार उसकी इच्छा ही का दूसरा रूप है। यह संसार और कुछ नहीं केवल उसकी इच्छाही मूर्तिमती हो रही है। बस, जब कि सब उसकी इच्छा ही है तो उसकी इच्छा का विरोध

करने वाला कौन है ? यही नियम है—यही ज्ञान है— जिससे मौत हमारी इच्छा के आधीन में हो जाती है। यह लेख उन लोगों के लिए है जो वेदान्त शास्त्र को पढ़ चुके हैं—जो यह समझ चुके हैं कि हमी ब्रह्म हैं। ❀

❀ ❀ ❀

धन प्राप्ति का उपाय।

तुम्हें धन की चिन्ता है। इस चिन्तामें व्यग्र रहते हो। पर इससे कुछ लाभ नहीं हो सकता। व्यग्र होने से—अधीर होने से-बुद्धि और बल दोनों मारा जाता है; इसी तरह शान्तिमें ये दोनों बढ़ते हैं। जिसके पास बुद्धि और बल दोनों नहीं, उसके पास लक्ष्मी नहीं आ सकती। बुद्धिहीन और बलहीन को दरिद्रता ही विशेष पसन्द करती है। पर इस जगह पर पिता की कमाई से जो धनी हैं उनका वर्णन नहीं है। जैसे बुद्धि और बल बढ़ाने के लिए चिन्तारहित और शान्तियुक्त होने की आवश्यकता है, उसी तरह धनी भी वही हो सकता है जो शान्तियुक्त है। शान्ति ही सम्पत्ति की कुंजी है। यदि तुम धनी होना चाहते हो तो व्यग्रता छोड़ दो; उस परमात्मा का ध्यान करो, जिसकी लक्ष्मी पैर दबाती और सेवा करती है। उसका ध्यान करना अपने स्वरूप का ध्यान करना है। तुम स्वयम् लक्ष्मीपति हो। भावना करो कि हम विष्णु हैं और लक्ष्मी हाथ जोड़े हमारी सेवा करने के लिए तैयार है। तुम अपने स्वरूप का ध्यान करो—इस तुच्छ "अहम्" को उस लक्ष्मीपति परमात्मा के साथ जोड़ दो, धन आपसे आप तुम्हारे चरणों की सेवा करेगा। ईश्वर दरिद्र नहीं है; वह लक्ष्मीपति है। लक्ष्मीपति का ध्यान कर कोई दरिद्र नहीं रह सकता। हम

दीन हैं—दरिद्र हैं यह भावना ही दरिद्रता का कारण हो रहा है। इसे छोड़ कर आज से यह भावना करो कि हम लक्ष्मीपति हैं—हम वह हैं जिसकी आज्ञा पालन करने के लिए सर्वदा लक्ष्मी खड़ी रहती है।

॥ समाप्त ॥